श्रीमद्विजयानन्दसूरिपादपद्मेभ्यो नमः।

।जिनगुण मंजरी.।

लेखक,

मुनि श्री तिलकविजयजी पंजाबी।

प्रकाशक,

श्री आत्मतिलक ग्रन्थ सोसायटी—

शा. सदुभाई तलकचंद.

रतनपोळ—अमदावाद.

वी. नि. २४५६. वि. सं. १९८६.

आत्म सं. ३४.

तृतीयावृत्ति.

मूल्य २ आने.

धी आनंद प्रीन्टींग प्रेसमां शा. गुलाबचंद लल्लुभाईए छाप्युं.
स्टेशन रोड—भावनगर.

अर्हं नमः

॥ श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

जिनगुण मंजरी.

सारेगम.

सा रे ग म प ध नी सा ।
सा नी ध प म ग रे सा ।

सासा रेरे गग मम पप धध नीनी
सानी परे गम पग मग रेसा ।

नीसा गम पप पधनी मप गरेसा
गग मम पप पप पधनी पपसा
पसा सानी धप मप धनी धप मगरेसा ।

तराना.

तानादीम तदीम तदीम तननन
दीम तदीम तनोम तानादीम तनोम
तदीम तनोम तदीम तनोम तनोम....
तानादीम दरदरदीम तदीम तनोम
दरदरदीम तदीम तनोम.... ....तानादीम

मंगलाचरण.

नमो मंगलमें महावीर नमो। टेक ॥

सिद्धार्थनन्दन, दुःखभंजन, सागरसम गंभीर. नमो ॥
पतित उद्धारक शिवसुख कारक, मेरु सम मन धीर नमो।२।
ज्ञान प्रदाता जगजन त्राता, नामी जगमें वीर. नमो।३।
मोहरूप जलधर हरनेको, तुम हो प्रबल समीर. नमो।४।
गौतम गणपति देवे शुभमति, कटे कर्म जंजीर. नमो।५।
भाव धरी प्रभु चरण परत हूं, हरो तिलककी पीर. नमो।६।

आदिजिन स्तवन.

(चाल–थई प्रेमवश पातलीया.)

प्रभु आदिजिन सुखकंदा हरो जन्ममरण भय फंदा
रे प्रभु० । टेक ।

आदिराज्य भोगी सृष्टीमें, तुम विन अवर न कोई,
शुध न्यायसे दुनिया मोही आचार निवारा गंदारे. प्रभु.।१।
आदि भवसागर तरनेका, मारग आप बताया,
तुम शुध संयम मन भाया, नाभिकुल सागर चंदारे. प्रभु.।२।
ज्ञान ध्यानसे कर्मारिको, तुमने दूर नसाया,
फिर केवलहृदय वसाया, पाया पद परमानंदारे. प्रभु. ।३।
मारुदेवी नंदनकेरी, मूरति मोहनगारी,
भविजन संकट हरनारी, सेवे मुनिगण सुरवृंदारे. प्रभु. ।४।
कृपा यदि तुम होवे स्वामी, आतम लच्मी पाऊं,
कहे तिलक ललितगुण गाऊं, ध्याउं धरी हर्ष अमंदारे.
प्रभु. ।५।

शान्तिजिन स्तवन.

गजल.

अचिराके नंद प्यारे, सुन वीनती हमारी
शरणा मैं आ गया हूँ, करुणानिधे तुमारी । टेक ।
तुमसा न कोई ज्ञानी, तुमसा न कोई दानी.
इंद्रादि देव भी तो, हैं आपके भिखारी. अचिरा. ॥ १ ॥
क्यों है मुझे भुलाया, मैं दास आपका हूँ.
क्यों दूर हो गई है, करुणा नजर तुमारी. अचिरा ॥२॥
रस प्रेमका लगाके, दिलको मेरे चुराया
अब तो सहा न जावे, तेरा वियोग भारी. अचिरा ॥३॥
गुणपोष दोषवामी, भव पार तार स्वामी
तुमसा न देव नामी, दुनियामें निर्विकारी. अचिरा ॥४॥
करके दया बचा ले, निज दासको बुला ले
मुझको सता रहा है, संसार दुःखकारी. अचिरा ॥ ५ ॥
तुम नाथ हो हमारे, हम दीन हैं तुमारे.
करुणा करी तिलक के, दो पाप ताप टारी. अचिरा ॥६॥

नेमीनाथ जिन स्तवन

(चाल—मजा दे ते हैं क्या यार)

दरिशन दीजोजी महाराज, तारक विरुद धरानेवाले,। टेक।
लीनी शरण तुमारी आज, इतना करो हमारा काज,
राखो बाँह गहेकी लाज भवोदधि पार लगाने वाले—
दरि ॥ १ ॥

तुम अपराजितसे आये, शोरी पुरनगर सुहाये,
पिता समुद्र विजय पाये, शिवानंदन कहलाने वाले—
दरि. ॥ २ ॥

लीना जन्म आपने सार, कीना दुखियोका उद्धार,
धारण किये महाव्रत चार, धनुषदश देह कहाने वाले—
दरि. ॥ ३ ॥

जन्मसे लीना वो व्रत धार, जो सब व्रतोंमें है सरदार,
भविजन तारे भवजल पार, पशुगण फंद छुडाने वाले—
दरि. ॥ ४ ॥

राजीमती तुमारी नार, रूपसे रंभाका अवतार,
छोड़ी करती हा हा कार, मुक्तिसे नेह लगाने वाले—
दरि. ॥ ५ ॥

पीओ जिनवाणीका जाम, होवे वल्लभ आतमराम,
हरदम करो धर्म के काम, तिलक प्रभुके गुणगाने वाले
दरि. ॥ ६ ॥

श्री पार्श्वजिन स्तवन।

गजल, ताल, चलत ।

प्रभु पास खास दास मुझे अबतो कीजिये ।
हूं देरसे खड़ा मैं दर्श अब तो दीजिये ॥ टेक ॥

विख्यात तेरा नाम तथा काम विश्वमें ।
है दीन दुखीको भी विभो पारकीजिये ॥ प्रभु० १ ॥

माना कि गुनेगार हूं मैं आपका सदा ।
पर करके दया अब तो गुना माफ कीजिये ॥ प्रभु २ ॥

धन माल खजानेकी मुझे चाह नहीं है ।
चरणो में जरा दासको अवकाश दीजिये ॥ प्रभु ३ ॥

दुनियामें सहारा है मुझे नाम तुमारा ।
बेहाल मुझे देखकर दिलमें पसीजिये. ॥ प्रभु ४ ॥

मायाकी मोह जालने मुझको फसालिया ।
करके दया दयाल बचा अब तो लीजिये. ॥ प्रभु ५ ॥

है बीनती तिलककी यह स्वीकार लीजिये ।
संसारभार सिरसे मेरे दूर कीजिये. ॥ प्रभु ६ ॥

' महावीर जिनस्तवन. '

(चाल—थई प्रेम वश पातालिया)

प्रभु वीर जिन जयकारी हरो चिन्ता सर्व हमारीरे प्रभु.
। टेक ।

आप कृपासे हे जिनवरजी, मारग शुद्ध पिछाना,
नहीं अन्य देव मन माना, देखा तुमसम उपकारीरे
प्रभु. । १ ।

काल अनंता भव भ्रम करके दर्श तुमारा पाया,
भव संचित कर्म खपाया छोडूं नहीं शरण तुमारीरे
प्रभु । २ ।

भव अटवीमें ज्ञान तुमारा, हमको राह बतावे,
सब मिथ्या मोह मिटावे, तुम दर्शनकी बलिहारीरे
प्रभु । ३ ।

आतम लक्ष्मी वल्लभ होवे, तब मैं हर्ष मनाउं,
धरी प्रेम ललित गुण गाउं, कहे तिलक करो भव पारीरे
प्रभु । ४ ।

सिद्धगिरि स्तवन.

भैरवी.

गिरि दरिशन सुखदानी, हां रे भविगिरि ॥ टेक ॥
इस गिरिवर पर साधु अनंता ।
वरिया शिव पटरानी. हां रे भविगिरि ॥ १ ॥
पुन्योदयसे श्री सिद्धगिरिके ।
दर्श करे भवि प्रानी. हां रे भविगिरि ॥ २ ॥
सूरि धनेश्वर इम फरमावे ।
गिरि भेटत भवि जानी. हां रे भविगिरि ॥ ३ ॥
सेव करत निश्चय भविपावे ।
सासय सुखकी खानी. हां रे भविगिरि ॥ ४ ॥
आतम लक्ष्मी वल्लभ होवे ।
तिलक ललित गुरु मानी. हां रे भविगिरि ॥ ५ ॥

आदिजिन स्तवन.

(बलिहारी रसिया गीरधारी, यह चाल.)

नाभिनंदन सुखकारी, धरी भाव हो नमु तुझने,
शिवपुरना वासी, सेवक तारियेजी ॥ टेक ॥

दोष अठारा वामी, सर्वगुणोंके धामी,
नामी जगत उपकारी, धरी भाव हो नमु तुझने.
शिव । १ ।
रूप तमारुं जोई, मुक्ति गई छे मोही,
काम सुभट गयो हारी, धरी भाव हो नमु तुझने.
शिव । २ ।
भावे नमामि स्वामी, तमे छो अंतरयामी,
राखूं न खामी सेवा तारी, धरी भाव हो नमु तुझने.
शिव । ३ ।
करुणा नजर करी, नाथ निहारो जरी,
तारो भवरूपी सागर पारी, धरी भाव हो नमु तुझने.
शिव । ४ ।
आतम लक्ष्मी पाउं, वल्लभ हर्षे ध्याउं,
तिलक ललित बलिहारी, धरी भाव हो नमु तुझने.
शिव । ५ ।

आदिजिन स्तवन.

(चाल भजानियोंकी–क्या गरज रही संसार से.)

तेरे सांचे दरबारमें हमने अरजी डाली है. (टेक.)
क्रोधादिक अरि चारकषाया, इन चारोंने मुझे सताया.

अब तो मेरी करो सहाया, करुणा नजर निहारके
नहीं तुझबिन मुझ वाली है. हमने ॥ १ ॥
क्या कहूं सुन अंतरजामी, तुम हो सर्व गुणोंके धामी
किरपा करो हरो मुझ खामी, वामी मोह विकारके.
तू राग द्वेष खाली है. हमने ॥ २ ॥
पिंजरमें पत्ती घभरावे, त्यूं सेवक जगमें दुख पावे
अब तो दुःख सहा नहीं जावे, हरो दुरितके फंदको.
यह दुनियां दुखवाली है. हमने ॥ ३ ॥
में दुखिया दुख दूर निवारो, कर्म सुभट शत्रुको टारो
दीनोद्धार विरुद है थारो--तारो सेवक जानके.
तुम आज्ञा मैं पाली है. हमने ॥ ४ ॥
आदि देव आदि जन राया, आद्यनंत तुमने सुख पाया
तिलक तेरे चरणोंमें आया, वल्लभ सुगुरु पायके.
जस वाणी मतवाली है. हमने ॥ ५ ॥

अजित जिन स्तवन.

अजित जिनंद सुचंदरे भविजन सुखकारी ॥ टेक ॥
जितशत्रु नंदा सुखकंदा, विजयामाता प्यारीरे । भवि. १ ।

वरमी दान दई लई दीक्षा, संगमें एक हजारीरे भविजन-
सुखकारी । २ ।

तमसे केवलज्ञानको साधी, कर्म सुभट कोटारीरे भविजन
सुखकारी । ३ ।

करी उपदेश भविक जनतारे, भवसागरसे पारीरे भविजन
सुखकारी । ४ ।

एकलाख साधु लई संगमें शीघ्र वर्या शिवनारीरे भविजन
सुखकारी । ५ ।

आतम लक्ष्मी वर्ष वधाई पाई श्री जिनराईरे भविजन
सुखकारी । ६ ।

वल्लभ सेवा श्री जिनवरकी ललित तिलक हितकारीरे
भविजन सुखकारी । ७ ।

चंद्रप्रभ जिन स्तवन ।

चाल होरी ।

श्रीचंद्र प्रभ जिनराज प्रभु तुम दरिशन अति सुखकारी ॥टेक॥
अष्टादश दूषणके त्यागी, द्वादश गुणके धारी—श्री ॥१॥
चंद्र समान सौम्यता तोरी, मोहे भवि नरनारी—श्री ॥२॥
चंद्रावतीमें जन्म लीयो है, चंद्र लंछन बलिहारी—श्री ॥३॥

राज्य छोड दीक्षा प्रभु धारी, केवलज्ञान स्वीकारी–श्री ॥४॥
संमेताचल मोक्ष सधारे, अष्टकर्म को जारी –श्री ॥५॥
आतम लक्ष्मी वल्लभ पाये, ललित तिलक उपकारी –श्री ॥६॥

शीतल जिन स्तवन ।

चाल नाटक.

बहार मेरे प्यारे गुलशनमें आई बहार ।
उतार मेरे प्रभुजी भवजलसे पार उतार उतार मेरे प्रभुजी ॥१॥
काल अनंत भयो भवमांही, पाया है दुःख अपार
अपार मेरे प्रभुजी ॥१॥
करुणाजनक दशा है मेरी ।
तेरी है दृष्टि उदार उदार मेरे प्रभुजी ॥ २ ॥
जगवन दुःख दावानल दहके ।
सेवक को लिजो उगार उगार मेरे प्रभुजी ॥ ३ ॥
शीतल जिन शीतल अघ करके ।
आतम वल्लभ उजार उजार मेरे प्रभुजी ॥ ४ ॥
इस निःसार जगतमें तिलक को ।
आज्ञा तुमारी है सार है सार मेरे प्रभुजी ॥ ५ ॥

श्री विमल जिन स्तवन ।

कव्वाली, ताल ३ ।

विना दर्शन किये तेरा, नहीं दिलको करारी है ।
चुरा कर ले गई मनको, प्रभु सूरत तुम्हारी है ॥वि० ॥टेक॥
न कलपाओ दया लाओ, हमें निज पास बुलवाओ ।
सहा जाता नहीं अब तो, विरहका बोझ भारी है वि०॥१॥
ज्ञानसे ध्यानमें तेरा, न सानी रूप दुनियामें ।
फिदा हो प्रेममें तेरे, उमर सारी गुजारी है ॥ वि०॥२॥
दया पूरन कष्ट चूरन, करो अब आश मम पूरन ।
मेहर की एक ही दृष्टि, हमें काफी तुम्हारी है ॥ वि०॥३॥
विमल है नाम जिन तेरा, विमल कर नाथ मन मेरा ।
चरणमें आपके डेरा, तिलक भव भव स्वीकारी है॥वि०॥४॥

धर्मजिन स्तवन ।

चाल. वीर जिन दरिशन नयनानंद (राग कालंगड़ा)

मेरो मन हरन करत भानु नंद, मेरो मन हरन करत. (टेक.)
शांत रूप भविजन मन मोहे, सोहे उडुगणमें जिम चंद. मेरो
पैंतीस गुण गर्भित प्रभु वाणी, पीओ जाणी भवि मकरंद. मेरो

धर्म जिनेश्वर धर्म प्रदाता, त्राता विरुद्ध जगत विकमंद. मेरो
शांत सुधारसके तुम सागर, करुणा नागर हरो भय फंद. मेरो
विश्व विभु मम भव दुःख टारो, जारो कर्म तरुके कंद. मेरो
आतम वल्लभ हर्ष वधाई, पावे तिलक विजय आनंद. मेरो

शान्ति जिन स्तवन।

कानुडा तारी कामण करनारी.

प्रभुजी तोरी पूजा सुखकारी, आतम पावन करनारी. (टेक.)
द्रव्य भावसे प्रभु तुम पूजा करते नर नारी सुख पावें, सुख पावें
जय जय जगजन हितकारी, आतम पावन करनारी ॥१॥
अष्टापद गिरि जिनवर पूजा रावण की भारी.
बजी वीणा, दुख खीणा, लीना जिनवर पद सारी. आतम.॥२॥
अर्हन सेवा शिवसुख मेवा करती भव पारी. करूं पूजा,
मन सूजा, जिनके उनकी बलीहारी. आतम. ॥३॥
शांति जिनेश्वर जग परमेश्वर भविजन हितकारी. करी करुणा,
दुख हरणा, शरणा तुमरा दिल धारी. आतम. ॥४॥
आतम वल्लभ ललित बनाओ शिव सुख अधिकारी.
तुम ध्याऊं, यही गाऊं, तिलकके भव दुःख दो टारी.
आतम. ॥५॥

कुंथु जिन स्तवन ।

(तमे धीमे धीमे चालो—यह चाल)

कुंथु जिनराया रे पुन्योदय पाया रे प्रभु मोहे तारिये होजी. हे जगमें नाहीं तुमसम देव दयाल, स्वामी मेरा करो सेवक पर ख्याल. कुंथु जिनराया रे, पुन्योदय पाया रे.

प्रभु मोहे तारिये होजी (टेक.)

जगबांधव जग तातजी रे वाला.
जग गुरु जगत आधार. कुंथु जिनराया रे ॥१॥
जगरक्षक जगसुखकरु रे वाला,
तू जगतारण हार. कुंथु जिनराया रे. ॥२॥
सर्व दोषनाशक तूही रे वाला.
सर्व गुणोंकी खान, कुंथु जिनराया रे. ॥३॥
कर जोड़ी विनती करूं रे वाला,
आपो वांछित दान. कुंथु जिनराया रे. ॥४॥
आतम वल्लभ कीजिये रे वाला.
कर्म रोग मिट जाय, कुंथु जिनराया रे. ॥५॥
ललित वचन शुभ भावसे रे वाला.
तिलक तेरा गुण गाय, कुंथु जिनराया रे ॥६॥

अरजिन स्तवन.

(जग कोई न विन जिनदेव सइयो—यह चाल)

मैं अरज करूं अरनाथ काज सेवकके सारोने (टेक.)
तू जगवत्सल जगधणी, तू देवाधिदेव.
मुनिवर खग सुर गणपति, करते तुज पद सेव.
प्रभु सबकी अघ जारोने, मैं अरज करूं. ॥१॥
भवजल तरनेहारको, दोषी न देव सुहाय.
हरि हर ब्रह्मा नामसे, लोक तेरा गुण गाय.
राय राणा अवधारोने, मैं अरज करूं. ॥२॥
शशी सम उज्वल शोभते, द्वादश गुणके धार,
घाती कर्मको क्षय करी पाये केवल सार.
चार मुझसे परवारोने मैं अरज करूं. ॥३॥
अष्टादश दूषण नहीं, निरदोषी जिनराय.
तिस कारण तुम नामसे, पाप ताप मिट जाय.
करी करुणा दुख टारोने मैं अरज करूं. ॥४॥
आतम वल्लभ कीजिये, हे जगतारणहार.
ललित संपदाको लहूं, होवे हर्ष अपार.
तिलक भव पार उतारोने, मैं अरज करूं. ॥५॥

मल्लि जिन स्तवन ।

राग भैरवि.

दर्श करो सुखदानी जिनंदजीका दर्श करो सुखदानी (टेक.)
जस दरिशनसे भवभय नासे, ऐसो देव मनमानी.
जिनंदजीका. ॥१॥
समकित निरमल हो दरिशनसे.
नाशे कुमति कुरानी. जिनंदजीका ॥२॥
अष्टकरम मल दूर करनको.
दरिशन निरमल पानी. जिनंदजीका. ॥३॥
दर्श करी भवि मोह निवारो.
धारो हृदय जिनवानी. जिनंदजीका. ॥४॥
क्या महिमा मैं कहूं जिनवरका.
सर्व गुणोंकी खानी. जिनंदजीका. ॥५॥
मल्लिनाथ जिन दर्श सुहंकर.
सर्व भयंकर मानी. जिनंदजीका ॥६॥
आतम लक्ष्मी वल्लभ पाओ.
तिलक ललित गुरु जानी. जिनंदजीका. ॥७॥

पार्श्व जिन स्तवन।

तर्ज कवाली.

तुमारे दर्श विन जिनजी, अनंता दुःख पाया है।
निहारो तो जरा दिल खोल, सेवक द्वारे आया है ॥टेक॥
हजारो जिभसे जिनजी करे गुणगान जो तेरा।
नहीं तो भी तुमारे गुण गणोंका अंत आया है ॥ तु० १ ॥
भ्रमत संसार अटवीमें, अनंता काल बीता है।
बडे पुन्योदयेंसे हाल, मानव जन्म पाया है ॥ तु० २ ॥
परंतु हो गया दुर्बल, करम दल बलकी सत्तासे।
घिरा हुं अब तो चारों ओर, बल दुश्मनका छाया है ॥ तु० ३ ॥
इनायथ की नजर होवे, तो सब दुख दूर होता है।
यथा करुणा करी तुमने, कमठ स्वर्गे पहुंचाया है ॥ तु० ४ ॥
भवि आनंद होते हैं, तुम्हारा नाम लेनेसे।
तिलकने आपका दर्शन, गुरु वल्लभसे पाया है ॥ तु० ५ ॥

पार्श्वजिन स्तवन।

कवाली.

नाम प्रभु पार्श्व जिनवरका, मेरे दिलमें समाया है,
हुआ है शांत चित जिसने, के आकर दर्श पाया है. ॥टेक॥

माखी–वामा माता जनमिया, पार्श्वनाथ जिन चंद.
अश्वसेन कुलमें प्रभु, दिन दिन वृद्धि करंद;
मिली सुर लोकसे अमरा सबी पूजनको आया है. नाम० १
माखी–तीस बरस गृहवासमें, बसिया श्री जिनराय;
बरसी दान दीया घना, संयम अवसर पाय.
लई दीक्षा कठिन तपसे कर्म घाती खपाया है. नाम० २
माखी–चौरासी दिन बादमें, पाया केवल ज्ञान;
इंद्रादिक ओछव करे, समोसरण मैदान.
दई उपदेश हितकारी चतुर्विध संघ बनाया है. नाम० ३
माखी–दश गणधर प्रभु थापिया, साधु सोल हजार;
तीन सहस प्रभुके हुए, चौदा पूर्वधार.
ज्ञानश्रुत रूप सागरसे केवली सम कहाया है. नाम० ४
माखी–दो शत एक हजार है, वादीका परिवार;
प्रज्ञासे मानो सही, सुरगुरु सम अवधार.
वाद कर जैनका झंडा जगत भरमें फिराया है. नाम० ५
माखी–विशाखा नक्षत्रमें, पाये पद निर्वाण;
मास क्षपण के पारणे, साधु तेतिस जाण.
भविको मोक्ष नगरीका सरल रस्ता बताया है. नाम० ६
माखी–पार्श्व प्रभुके नामसे, सर्व उपाधि जाय;

दरिशनसे भव भय मिटे, पूजन पाप पलाय.
तिलकने आपका दर्शन गुरु वल्लभसे पाया है. नाम० ७

पार्श्व जिन स्तवन ।

चाल—नाम पार्श्वजिन लीजेरे.

पार्श्वचरण चित दिजे भविया दीजेरे दीजेरे दीजे मन रीझे. टिक
करी पूजा प्रभु चरणकमलमें. शुभ मन ध्यान
धरीजे रे धरीजे रे धरीजे मन रीझे. पार्श्व० ॥१॥
जिन गुण मालती रस समजानी. भमर परे नित पीजे रे
पीजे रे पीजे मन रीझे. पार्श्व० ॥२॥
इम विध प्रभुका अरचन करके. मानव भव फल लीजे रे
लीजे रे लीजे मन रीझे. पार्श्व० ॥३॥
आतम लक्ष्मी वल्लभ होवे, अष्ट करम दूर कीजे रे
कीजे रे कीजे मन रीझे. पार्श्व० ॥४॥
तिलक कहे गुणगान करीने, भव संताप हरीजे रे
हरीजे रे हरीजे मन रीझे. पार्श्व० ॥५॥

चिंतामणी पार्श्व जिन स्तवन ।

(चाल–वीरा मारा गज थकी उतरो)

पास चिंतामणी सांभलो, अरजी जगदाधार रे ।
तुम दरिशन विन भव भम्यो, खमियो दुःख अपार रे.
॥ टक. ॥

षटपद मन जिम मालती, चाहत चंद्र चकोर रे ।
चातक मन जलधर वसे, वर्षा ऋतु मन मोर रे ॥ पास० १
जिम गिरिजा मन शिव वसे, सीता मन जिम राम रे ।
तिम मेरे मन तुम वसो, निरमल गुणके धाम रे ॥ पास० २
लड़थड़तां तुम शरणमां, आयो छुं हुं कृपाल रे ।
तारक बिरुद धराईने, तारोने दीन दयाल रे ॥ पास० ३
तीन भुवन शीरताज छो, तुम प्रभु देवाधिदेव रे ।
पार करो भवजल थकी, निशदिन करुं तुम सेव रे ॥ पास० ४
भविजनने संसारमां, तुम पादाब्ज पसाय रे ।
नेक नजर प्रभु तुम तणी, लोकोत्तर सुख थाय रे ॥ पास० ५
आदि जिन कुंथु चौमुखा, शांति जिनंद गोडी पास रे ।
शासनपति श्रीवीरजी, पुरो मुझ मन आश रे ॥ पास० ६
विद्यापुर शुभ नगरमां, छे नव जीनना जिनालय रे ।

जे शुभ मन सेवा करे, तेनां भव दुःख टालय रे ॥ पास० ७
चतुरमास सुखथी कर्यो, साधु पांच मन रंग रे ।
गुणनिधिना गुण गावतां, गुण आवे निज अंग रे ॥ पास० ८
आतम लक्ष्मी जो मीले, चेतन वल्लभ थाय रे ।
ललित वचन शुद्ध भावथी, तिलक तेरा गुण गाय रे ॥ ९

महावीर जिन स्तवन.

(चाल—आमक तो हो चुका हूं)

पैदा हुवे हैं भगवन दुखसे छुडानेवाले,
भूले हुवे जनोंको रस्ता बतानेवाले. । टेक ।
सिद्धार्थके दुलारे, त्रिशलाके नंद प्यारे,
आंखोंके मेरी तारे, दिलको लुभानेवाले. पैदा. ।१।
जन्माभिषेक जिसदम, इंद्रोंसे हो रहा था,
अंगुष्ट बलसे उसदम, मेरु चलानेवाले. पैदा. ।२।
संसार मोहमाया, को ध्यानसे हटाया,
आनंद धाम पाया, करुणा समुद्रवाले. पैदा. ।३।
अहो ब्रह्मज्ञान धारी, शिवमार्गके विहारी,
विपदा हरो हमारी, ए वीर नामवाले. पैदा. ।४।

दे करके दान जनको, करके निरोध मनको,
तपसे सुखाके तनको, शिवशर्म पानेवाले. पैदा. ।५।
प्रभु आपके तिलकको, है आप नाम शरणा,
संसार पार करुणा, करके लगानेवाले. पैदा. ।६।

श्री महावीर जिन स्तवन ।

गजल, ताल. ३ ।

हमको सदा मुबारिक, प्रभु जन्म हो तुम्हारा २ । टेक ।
जब जन्म आप लीना, त्रैलोक्य सौख्य दीना ।
था देवमें नगीना, सिद्धार्थका दुलारा ॥ हम० १ ॥
थे जन्मसे ही ज्ञानी, न थे तथापि मानी ।
ब्राह्मनके पास पढ़ने, को हो गये तयारा ॥ हम० २ ॥
यह जान इंद्र आया, आसनपे खुद बिठाया ।
फिर आपके ही मुखसे ब्रामनका शल्य टारा ॥हम० ३॥
मन धार धर्म पुष्टी, करलोच पंच मुष्टी ।
ले देव दूष्य तुमने, जगसे किया किनारा ॥ हम० ४ ॥
निज आत्म ध्येय ध्याके, कैवल्य ज्ञान पाके ।
रस्ता सरल बताके, लाखोंको पार तारा ॥ हम० ५॥

हे वीर देव देवा, तुम चरण मेव मेवा।
है मांगता तिलक भी करके मदा पुकारा ॥हम० ६॥

सामान्य जिन स्तवन।

राग—प्रभाती।

दीनपर दया करो भगवान २ । टेक।
मुझको ये दिन रैन मतावें।
क्रोध लोभ अभिमान, दीन पर दया करो ॥ १ ॥
घेर लिया मुझे मोह तिमिरने।
दान करो मद्ज्ञान, दीन पर दया करो ॥ २ ॥
पुन्य गमाया पाप कमाया।
हो कर अवगुण वान, दीन पर दया करो ॥ ३ ॥
दूर करो दुख नाथ दीनके।
तुम हो करुणावान, दीन पर दया करो ॥ ४ ॥
हाल मेरा जल हीन मीन मम।
आप विना भगवान, दीन पर दया करो ॥ ५ ॥
दीन हीनको आप बनाओ।
त्रिभुवन तिलक समान, दीन पर दया करो ॥ ६ ॥

सामान्य जिन स्तवन।

राग–आशावरी.

अब तारो भवपार दयानिधि, अब तारो भवपार । टेक ।
भवसागरके बीच पड़े हम ।
सहते दुःख अपार दयानिधि अब तारो भवपार ॥१॥
मोह लोभने नष्ट किया है ।
दिलका श्रेष्ट विचार दयानिधि अब तारो भवपार ॥२॥
भूल गये हम सबक पुराना ।
सोहं सोहंकार दयानिधि अब तारो भवपार ॥३॥
स्वारथ में हो लीन सदा हम ।
करते कारोबार दयानिधि अब तारो भवपार ॥४॥
पाप कमाके पुन्य गमाके ।
हुआ तनु भूभार दयानिधि अब तारो भवपार ॥५॥
करतब त्याग रहे कर अब हम ।
उलटा ही व्यापार दयानिधि अब तारो भव पार ॥६॥
अब इस दुखसे शीघ्र छुड़ाओ ।
तुम हो दीनोद्धार दयानिधि अब तारो भवपार ॥७॥
दशा देखकर नाथ हमारी ।

करो दया विस्तार, दयानिधि अब तारो भवपार ॥८॥

नाश करो अज्ञान तिमिरका ।

करो ज्ञानसंचार दयानिधि अब तारो भवपार ॥९॥

भरो सदा उर पर उपकृतिसे ।

करता तिलक पुकार दयानिधि अब तारो भवपार ॥१०॥

शीतल जिन स्तवन ।

राग शाम कल्याण.

प्रभु मूरति भविजन मन हारी, प्रभु मूरति—टेक

भास्वर शुक्ल गुणोंसे दीपे, जिम गगने तिमिरारी ॥१॥

उडुगणमें शशधर जिम सोहे, तिम सोहे छबी तारी ॥२॥

तुज पद पंकज भ्रमर थईने, सेवे सुर नरनारी ॥३॥

शीतल अघ शीतल कर स्वामी, तुमरी शरण दिलधारी ॥४॥

दरश करी भवि आनंद पावे, जावे मदन विकारी ॥५॥

विश्व जयंकर तू ही शिवंकर, तू ही जगत हितकारी ॥६॥

आतम लच्मी निज घट प्रगटे तिलक ललित गुणधारी ॥७॥

सामान्य जिन स्तवन ।

चाल धनाश्री.

तुम दर्शनमें लीन मेरो मन तुम दर्शनमें लीन, ॥टेक॥
दर्श विना जिया तरस रहा है, जैसे जल विन मीन ।
मेरो मन ॥ १ ॥
ज्यों पंखीका हाल जालमें, है मेरा सो दीन मेरो० ॥२॥
तुम गुण रसिक सुधासागरमें, मन मेरो पाठीन मेरो० ॥३॥
भव भव मांही निज सेवकको, दीजो वस्तु तीन मेरो० ॥४॥
आतम लक्ष्मी वल्लभ होवे, तिलक ललित आधीन. मेरो० ॥५॥

सामान्य जिन स्तवन ।

शुं कहुं कथनी मारी राज. चाल नाटकी.

क्या कहुं कथनी म्हारी राज, क्या कहुं कथनी—
मैं तो कीनी न सेवा तुमारी रा.......ज
॥ टेक ॥
भव अटवीमें भ्रमण करत प्रभु, सुध बुध सगरी हारी ।
पिण तुम बिन नहीं शरण मिला कहीं, इस विध गई
मति मारी रा..........ज ॥१॥

राग द्वेषथी बहु भव पायो, नरकादिक दुःख भारी ।
पुन्य योग मानव भव आयो, हार शरण तुम धारी
ग............ज ॥२॥

तुम दरिशनसे पाप पलावे, जावे मदन विकारी ।
शिव सुख आपे भव दुख कापे, नेक नजर प्रभु थारी
ग............ज ॥३॥

शान्त सुधारसके तुम सागर, शान्त करो अघ भारी ।
भव दावानलमेंसे निकालो, पालो ने नीति तुमारी
ग............ज ॥४॥

आतम लक्ष्मी वल्लभ पाउं दुरित खपाउं भारी ।
तिलक कहे प्रभु आ भव मांही, तुम सेवा दिलधारी
ग............ज ॥५॥

सामान्य जिन स्तवन ।

चाल नाटक. आंख बिना अंधारुं रे ।

भवजल पार उतारो रे, दयालु देवा भवजल पार
उतारो. ॥टेक॥

कोईके मन वासुदेवा, कोई करे शिवनी सेवा.

मारे मन तुमविन अवर न प्यारो प्यारो रे. दयालु
देवा भवजल० ॥१॥
कोई मन ब्रह्मा भावे, कोई राम नाम गावे; कोई वली एथी
न्यारो न्यारो रे, दयालु देवा भवजल पार उतारो ॥२॥
मारे मन एथी न्यारी, शरण तुमारी धारी. शिव सुख आपो
कापो भवदुख मारो रे, दयालु देवा भवजल पार० ॥३॥
आतम लक्ष्मी स्वामी, वल्लभ होवे नामी ललित शिशु
प्रभु तिलकनी अरज सीकारो रे. ॥ दयालु० ॥ ॥४॥

सामान्य जिन स्तवन ।

चाल—भजनियोंकी. क्या गरज रही संसारसे ।

भवि पूजो शुद्ध मन भावसे, प्रभु जगजन हितकारी है (टेक)
तीन लोकमें देव न ऐसे, वीतराग जिनवर हैं जैसे ।
वरनन मुखसे करुं मैं कैसे, सर्व गुणोके धाम हैं ।
नहीं संगमें जस नारी है, प्रभु जगजन हितकारी है ॥१॥
अष्टादश दूषणको टारी, द्वादश गुणको लीना धारी ।
पार किये भवजल नर नारी, करुणा नजर निहारके ।
प्रभु तुमरी बलिहारी है, प्रभु जगजन हितकारी है ॥२॥

क्रोधी मानी देव विकारी, क्या देवे जो आप भिखारी।
तुमने सबकी ताप निवारी, दान दिया दिल खोलके।
तुम मूर्त्ति अति प्यारी है, प्रभु जगजन हितकारी है ॥३॥
अरज करूं सुनो अंतरयामी, ज्ञानदान दो तुम नहीं खामी।
तारण तरण विरुद है नामी, तारो सेवक जानके।
अब अरज यही म्हारी है, प्रभु जगजन हितकारी है ॥४॥
आतम लक्ष्मी वल्लभ पावे, ललित वचनसे जो गुण गावे।
तिलक कहे भवभय मिट जावे, दरिशनसे जिनराजके।
महिमा जिनकी भारी है, प्रभु जगजन हितकारी है ॥५॥

सामान्य जिन स्तवन।

राग जंगला, ताल दीपचंदी।

अब प्रभु पार करो मेरी नैया, तुम हो तारक और तरैया।
अब प्रभु पार करो मेरी ॥टेक॥
थाह नहीं जल अगम अपारा, राग द्वेष बहु भार भरैया॥
मोह धारमें नाव बही है, तुम विन मेरा कौन खिवैया
अब प्रभु० ॥ १ ॥
क्रोध लोभ मद मीन लडत हैं, मायाजाल पड़ी बिच भारी।
ममतावल्ली पास नहीं है, विषय वासना देत डुबैया
अब प्रभु० ॥ २ ॥

पंचाश्रव भये छेद नावमें, नस्सा तप जप भाव न रहिया ।
शम दम शील सेवंता नाहीं, पापनीरसे खूब भरैया अब प्रभु०।।३।।
आतम लक्ष्मी मम उर थापो, आपो निजगुण दानदिवैया।
नाशे करम भरमका फंदा, तिलक कहे गुण गान गवैया
अब प्रभु ।।४।।

सामान्य जिन स्तवन।

(चाल आसक तो हो चुका हूं)

जब नाम विश्व रोशन, तारन तरन तुम्हारा
भवजलमें डूबता क्यों, फिर पोत है हमारा ।।टेक।।
अति क्रोध मान माया, और लोभ ये कषाया ।
इनका ही मैं भमाया, फिरता हूं मारामारा ।। जब० १
धारामें जा रही है, बह करके नाव मेरी ।
करुणानिधे बचाओ देकर जरा सहरा ।। जब० २
इच्छा हमें नहीं है, तुमसे विभो विभव की ।
हम चाहते हैं दर्शन, पीयूषसा तुम्हारा जब० ३
जलहीन मीन जैसे, हैं आपके विना हम ।
बरसा दो नाथ अब तो, सद् ज्ञान मेघ धारा ।। जब० ४

---

१ नावमें से पानी निकालनेका साधन.

मृत्युसे भी हृदयमें, भय मानते नहीं हम ।
प्रभु नाम याद आवे, उस दम यदि तुम्हारा ॥ जब० ५
सर्वेश आश पूरो, कर्मोंके फंद चूरो ।
तुम नाम ही तिलकको लगता है प्यारा प्यारा ॥ जब० ६

सामान्य जिन स्तवन ।

चाल—मजा देते हैं क्या यारे तेरे बालगुंगरवाले ॥

हम पर दया करो महाराज, दीनानाथ कहाने वाले. २(टेक)

तुमने किया बहुत उपकार, तारे भविजन भवजल पार ।
करके दीनोंका उद्धार, सदा शिव लक्ष्मी पाने वाले
॥ हम० १ ॥

अब मैं किया तुम्हारा साथ, तुम हो दीनबंधु जगनाथ ।
तारो पकड़ के मेरा हाथ, भवोदधि पार लगाने वाले
॥ हम० २ ॥

हो कर माया में मशगूल, मैं तो गया आपको भूल ।
पड़गई मेरी अकलपर धूल, अब कुछ देर कर ज्ञान
बचा ले ॥ हम० ३ ॥

मैं हूं तुम चरणों का दास, पूरण करो विभो मम आश ।
मागूं आतम रूप विकाश, दया कर दान दिवाने वाले
॥ हम० ४ ॥
अब तो करो जरा कुछ ख्याल, मेरा हुआ हाल बे हाल ।
सिरपर फिरे काल विकराल, तिलकको अपने पास
बुलाले ॥ हम० ५ ॥

सामान्य जिन स्तवन ।

तर्ज कवाली.

तेरे दरबारमें हमने, अरज अपनी गुजारी है ।
सुनो या ना सुनो स्वामी, कि यह मरजी तुम्हारी है ॥टेक॥
विना दर्शन किये तेरा, कठिन है जीवना मेरा ।
विरहने आन कर घेरा, नहीं दिलको करारी है ॥तेरे०१॥
चुरा कर दिल मेरा अब क्यों, नहीं दर्शन दिखाते हो ।
तुम्हारे दर्शकी अबतो, मुझे उम्मीद भारी है ॥तेरे०२॥
रमा है नूर आंखोंमें, तुम्हारी प्रेम दृष्टिका ।
न जाने मोहनी सूरत, ये कैसी जादुगारी है ॥तेरे०३॥
मिले इस प्रेमका बदला, तो जीवन हो सफल मेरा ।
दयाकी भीख दे दरपे, खड़ा तेरे भिखारी है ॥तेरे०४॥

दया उस दम् करोगे क्या, कि जब आंसु बहाउँगा ।
छिपी है आपसे क्या, जो दशा इस दम् हमारी है ।।तेरे०५।।
जरा दिल खोल कुछ तो बोल, इस अनमोल मुखड़ेसे ।
तिलकको आपकी वाणी सुधामे भी पियारी है ।।तेरे०६।।

सामान्य जिन स्तवन ।

कवाली, ताल ३

तुम्हारी मोहनी मूरत मेरे दिलमें समाई है २ ।। टेक ।।
न दिनको चैन पहलूमें, न शबको नींद आती है ।।
न जाने आपने दर्शन, की मैं कैसी पिलाई है ।।तु०१।।
दिया मैं त्याग जगफानी, फकीरी वेष धारा है ।
नजर जादु भरी जबसे, हमें तुमने दिखाई है ।।तु०२।।
विचरता हूं कभी तनमें, कभी वसति कभी वनमें ।
जहां सारा रही भटका, मुझे तेरी जुदाई है ।।तु०३।
नहीं ताकत मेरे पैरोंमें, अब दरदर भटकनेकी ।
तिलकको नाम बस हर दम्, एक तेरा सहाई है ।।तु०४

सामान्य जिन स्तवन।

कवाली, ताल ३

छुड़ा ले दासको बंधनसे ये, अरजी हमारी है।
पड़ा हूं आन चरणोंमें, शरन अब तो तुम्हारी है ॥टेक॥
भुलाकर आपको स्वामी, पड़ा मैं मोहफंदेमें।
सदा दुनियाके धंधेमें, उमर सारी गुजारी है ॥छुड़ा० १॥
विषयने आनकर घेरा, किया बेहाल है मेरा।
सहारा है मुझे तेरा, न दिलमें और धारी है ॥छुड़ा० २॥
निकलना है बड़ा मुशकिल, पड़ी है जाल मायाकी।
मुझे संसार कारागर, सम ही दुःखकारी है ॥छुड़ा० ३॥
सभी कुछ गांठका खोया, कभी रोरो के मुह धोया।
छिपी है आपसे क्या, जो दशा होती हमारी है ॥छुड़ा० ४॥
दया करके दयाधारी, बचाले दास हूं तेरा।
तरन तारन नहीं तुम सा, न तुमसा निर्विकारी है ॥छुड़ा० ५॥
खड़ा हूं दरसे दरपे लगाकर ध्यान चरणोंमें।
तिलककी आश कर पूरन, तेरा दरबार भारी है ॥छुड़ा० ६॥

सामान्य जिन स्तवन ।

गजल.

रोशन तो हो रहा है, दुनियामें नाम तेरा २ ॥ टेक ॥
सेवा मुझे तुमारी, प्रभु शान्ति लागे प्यारी ।
तुमसे ही काम मेरा, दुनियामें नाम तेरा ॥ ॥१॥
है वीनति हमारी, जो हो मेहेर तुम्हारी ।
टारो अनादि फेरा, दुनियामें नाम तेरा ॥ ॥२॥
सेवक मैं हूं तुम्हारो, करुणा नजर निहारो ।
तुम विन सभी अंधेरा, दुनियामें नाम तेरा ॥ ॥३॥
रस्ता हमे बतावे, बुरे पंथसे बचावे ।
ये ज्ञान विश्व व्यापी, भानु समान तेरा ॥ ॥४॥
वल्लभ तिलक पामी, गुरु देवको नमामि ।
मुक्तिमें हो बसेरा, दुनियामें नाम तेरा ॥ ॥५॥

सामान्य जिन स्तवन ।

गजल.

है जगतमें नाम ये रोशन सदा तेरा प्रभु ।
तारने उसको सदा जो ले शरण तेरा प्रभु—टेक.

लाख चौरासीमें घेरी, कर्मने मारा मुझे ।
ले बचा अब तो महारा, है मुझे तेरा प्रभु ॥ है० १ ॥
सेंकडोंको तारते हो, मेहेरकी करके नजर ।
क्यों नहीं तारो मुझे हे, क्या गुना मेरा प्रभु ॥ है० २ ॥
हाल जो तनका हुआ है, आप विन किसको कहूं ।
मोह राजाने मुझे चारों, तरफ घेरा प्रभु ॥ है० ३ ॥
आपसे हरदम् तिलककी, तो यही अरदास है ।
आप चरणोंमें रहे मेरा, सदा डेरा प्रभु ॥ है० ४ ॥

सामान्य जिन स्तवन ।

कवाली.

अरे जिनराज सुनो महाराज, अरज दिलमां उतारोने ।
करूं सेवा सदा तोरी, अनादि भूल टारोने ॥
साखी—कर जोडी विनति करूं सुनियो दीनदयाल.
जिम जल विन थल मीन छे, तिम सेवकनो हाल.
तड़पतीं हूं झड़पता हूं दया जलसे उधारोने ॥ अरे० १
साखी—करुणावंत करुणा करी मुझ पापीको तार.
तुमसा देव नहीं कहीं देख लिया संसार.
तरन तारन कहाते हो विरुद अपना संभारोने ॥ अरे० २

साखी—निर्भेदे भक्ति करी, तुम सेवार्थी खास,
होवे वल्लभ आतमा, सफल मनावे आश.
यही अरजी हमारी है तिलकके काज सारोने ॥ अ० २

सामान्य जिन स्तवन ।

गजल.

दर्शनको नाथ तेरे मनवा लुभा रहा है २ ॥ टेक ॥
तजकर सबी बखेड़ा, दिलमें तुझे बसाया ।
तेरा वियोग मुझको हरदम् सता रहा है ॥ द० ॥१॥
नहीं नींद रैन दिनमें, आती मुझे घडी भर ।
बस नाम एक तेरा, दिलमें समा रहा है ॥ द० ॥२॥
कर याद नाथ मेरी, शरणा लई मैं तेरी,
दे काट भर्म फेरी, चित ये ही चा रहा है ॥ द० ॥३॥
तुम प्रेम में दिवाना, हो करके फिर रहा हूं,
तेरा फिराक क्या क्या, जल्वे दिखा रहा है ॥ द० ॥४॥
करुणाके नैनवाली, सूरत जरा दिखादे ।
सब छोड़ कर तिलक तो, गुण तेरा गा रहा है ॥ द० ॥५॥

सामान्य जिन स्तवन।

गजल, ताल ३,

हम तो दावन गीर तेरे हो चुके २ ॥ टेक ॥

कर रहम अब हमपे अपना जानकर।
लाख चौरासीमें हैरां हो चुके ॥ हम० १

ए पाक रूहे भुलाकर आपको।
हम सभी सर्वस्व अपना खो चुके ॥ हम० २

आपका दरबार है इन्साफका।
हम भी अपनी अरजी उसमें दे चुके ॥ हम० ३

ले छुड़ा दीनोंको दुनिया जालसे।
दीनबन्धु नाम तेरा ले चुके ॥ हम० ४

हैं बुरे या हम भले पर आपके।
आपके कदमोंमें रोना रो चुके ॥ हम० ५

आपके दर्शनमें चढ़ते भावसे।
हैं तिलक भी घोर पातिक धो चुके ॥ हम० ६

पदावली वा सझाय-रत्नावली।

(१)

चाल, बनजारेकी।

महावीर कहे निरधारा सुन गौतम वचन हमारा २
॥ टेक ॥

जगमें नहीं अपना कोई, निज स्वारथके सब होई।
जग स्वारथ जाल परोई रे, सुत मात पिता परिवारा॥
मुन० ॥ १ ॥

यह जीव एकला जावे, धन माल यहां रह जावे।
निजकृत सुकृत संग आवे रे, नहीं तिरिया देत सहारा॥
मुन० ॥ २ ॥

नर देह रत्नको पाके, सद्‌गुरु चरणोंमें जाके।
सब मिथ्या भरम मिटाके रे, मनमें कुछ करो विचारा॥
सुन० ॥ ३ ॥

चिदघनमय जीव कहावे, पुद्‌गल संग सुख दुख पावे।
विन ज्ञान भान नहीं आवे रे, सब मोहने जाल पसारा॥
सुन० ॥ ४ ॥

पहले कर तत्त्व पिछान, फिर धरो ध्येयका ध्यान।
कर निजरूपामृत पान रे, पावन हो आत्म तुम्हारा॥
सुन० ॥ ५ ॥

यों सुना वचन जिनवरका, मन हुआ शुद्ध गणधरका ।
संयम ले मनमें हरखा रे, किया द्वादशांगी विस्तारा ॥
सुन० ॥ ६ ॥

जिनवाणी गुणकी खाणी, भवसागर नौका जाणी ।
सेवी शुभ मन भवि प्राणी रे, कहे तिलक होय भवपारा ॥
सुन० ॥ ७ ॥

(२)

राग आशावरी ।

कर्मगति अति न्यारी जीयरवा कर्मगति अति न्यारी ।
चली न सके मति मारी जीयरवा कर्मगति० ॥ टेक ॥
कोई दिन भोगी कोई दिन योगी, कोई दिन हाल
भिखारी ॥
हरिश्चंद्र सतवादी राजा, बेची सुतारा नारी, जी० ॥१॥
पुत्र बेचाया कर्मकी लीला, भया नीच घर वारी ॥
पांडव पांच महा बलवंता द्रौपदी नारी हारी जी० ॥२॥
बार बरस लग वन दुख खमिया, भमिया जेम भिखारी ॥

रावण राजा बहु अभिमानी, लक्ष्मणे नाख्यो मारी ॥
जी० ॥ ३ ॥

समकित धारी श्रेणिक राजा, पुत्रे कीनी खुवारी ॥
वासुदेव रणमें बलवंता, नरके गयोरे मुरारी ॥ जी० ॥४॥

एम अनेक उदाहरण जानो, कर्म सुभट बहु भारी ॥
जे जन जगमें कर्म न बांधे, ते पावे गति सारी ॥
जी० ॥ ५ ॥

आतमलक्ष्मी वल्लभ होवे, तिलक लहे भवपारी ॥
जीयरवा० ॥११॥

(३)

दरबारी कानड़ा ।

क्या सोच करे निज मनमें, क्या सोच करे निज मनमें ।
जिसको बाहर खोज रहा है, सो है तेरे मनमें क्या ॥ टेक ॥

तू धनकाज लाज निज खोवे, बोवे बीज बदीके ।
लाख करोड़ कमाय गये बहु, तो न मिला सुख धनमें ॥
क्या० ॥ १ ॥

क्यों भटकत विन चैन रैन दिन, ध्यान लगाकर श्रवण वैन जिन.
कर धारन समभाव चाव रख, प्रभुके चरन मिलनमें ॥
क्या० ॥ २ ॥

अंध समान ज्ञान विन जगमें, पंथ कुपंथ भमी दुख पायो ।
चिंता रतन डार पछतायो. भरत नीर नैननमें ॥
क्या० ॥ ३ ॥

तिलक कहे धीरज धर मनमें, क्या ढूंढत वसति और वनमें ।
जो कुछ है सो तेरेही तनमें, तड़ित तेज जिम घनमें ॥
क्या० ॥ ४ ॥

(४)

राग—दरबारी कानडा ।

साबुन से अंग क्या धोवे २ ॥टेक॥

मन मैला तन शुद्ध करत तू, बगलाके सम ध्यान धरत तू.
मनको शुद्ध किये विन चेतन, आत्मशुद्ध नहीं होवे ॥
सा० ॥ १ ॥

क्रोध मान मद लोभ लुटेरे, लूट रहे क्या सोवे,
विषय वासना त्याग जाग नर जन्म वृथा क्यों खोवे,
सा० ॥ २ ॥

स्वारथके वश होय मूढ क्यों, बीज बदीके बोवे,
अपने आप हार कर बाजी, तिलक कहे क्यों रोवे ॥
मा० ॥ ३ ॥

(५)

चाल–(जाग हो सोनेवाले मुसाफिर संगसाथीने डेरा उठाया)
मान हो मतवाले निराले सब झूठी है मोहनी माया–टेक.
कौन पिता अरु कौन है माता, कौन चचा कौन ताया.
वासुदेव चक्रवर्ती हो गये, उनको भी कालने खाया रे.
सब झूठी है ॥१॥
स्वारथके सब भगिनी भाई, स्वारथकी घर जाया.
बिन स्वारथ जगमें नहीं कोई, स्वारथ घट घट छाया रे.
सब झूठी है ॥२॥
काल अनंता इन विषयनमें, मूरख जन्म गमाया.
निज गुण त्यागी परगुण रागी, होकर मूढ कहाया रे.
सब झूठी है ॥३॥
जगमाया त्यागी भवि प्राणी, आतम वल्लभ पाया.
हर्ष धरी शिवलक्ष्मी पावे, तिलक ललित गुरु भाया रे.
सब झूठी है ॥४॥

(६)

चाल गुजराती नाटककी.

जानो नागिनी कारी रे कारी रे कारी परनारी २ टेक.

तिरछी निगाह बाणोंसे मारे, देखत लागे प्यारी रे प्यारी
रे प्यारी परनारी. जानो० ॥१॥

वार करे पछी प्यार करीने,
मधभरी जेम कटारी रे कटारी रे कटारी परनारी.
जानो० ॥२॥

स्वाद अल्प दुख पार नहीं है,
मत्र विषय विषधारी रे धारी रे धारी परनारी जानो॥३॥

इस वनितावश होकर प्राणी,
जन्म गये बहु हारी रे हारी रे हारी परनारी. जानो॥४॥

चाहे करो इसके दिलधारी,
तोभी हृदय मे न्यारी रे न्यारी रे न्यारी परनारी. जानो॥५॥

विषय तजी भजो श्री जिनवरको,
करो आतम उजयारी रे यारी रे यारी परनारी. जानो॥६॥

तिलक कहे वल्लभ गुरु पाओ,
थाओ भवजल पारी रे पारी रे पारी परनारी. जानो ॥७॥

(७)

चाल—नमो नमो मनक महामुनि.

मान न करजो रे मानवी, मानथकी गुण जाय रे.
मान न करजो रे. ॥ टेक ॥

वरस दिवस काउसग रह्या, मनमां राखी मान रे,
ते बाहु बली मुनिवरा, न लह्यो केवल ज्ञान रे. मान० १
चौथो चक्री जाणिये. स्वेच्छित विलसे भोग रे.
मान कर्यो निज रूपनो, उपन्यो अंगे रोग रे. मान० २
गर्व करी निज ज्ञाननो, धार्यो रूप मृगेंद्र रे,
पूरण श्रुत पाम्यो नहीं, श्रीस्थूलभद्र मुनीन्द्र रे. मान० ३
मानी माणस मानथी, जे कांइ करवा जाय रे,
मानतणी परिणति थकी, ते सहु निष्फल थाय रे. मान० ४
मान तजी भजी वीरने, करो आतम उद्धार रे,
ललित गुरु सेवा करी, तिलक लहो भवपार रे. मान० ५

(८)

ठुमरी.

बता दे सखी किधर गये नेमि शाम. २ ॥ टेक ॥
नेमी पिया मुझ मनमें वसे हैं,
जिम सीता मन राम. बता दे. ॥१॥

अब इस रंग विरंग महलमें, मेरा है क्या काम.
बता दे सखी ॥२॥
जोगन बनके निरजन वनमें, नित्य जपुंगी पति नाम.
बता दे सखी ॥३॥
तिलक कहे नेमी जिन सेवो, सर्व गुणोंके धाम.
बता दे सखी ॥४॥

(९)

चाल—गजल.

भावना.

ऐसी दशा हो भगवन् जब प्राण तनसे निकलें २ ॥ टेक ॥
गिरिराजकी हो छाया, मनमें न होवे माया.
तपसे हो शुद्ध काया, जब प्राण तनसे निकलें. ऐसी० १
उरमें न मान होवे, दिल एक तान होवे.
तुम चरण ध्यान होवे, जब प्राण तनसे निकलें. ऐसी० २
संसार दुःख हरणा, जिनधर्मका हो शरणा.
हो कर्म भर्म खरना, जब प्राण तनसे निकलें. ऐसी० ३
अनसनको सिद्ध वट हो, प्रभु आदि देव घट हो.
गुरुराज भी निकट हो, जब प्राण तनसे निकलें. ऐसी० ४
यह दान मुझको दीजे, इतनी दया तो कीजे.
अरजी तिलककी लीजे, जब प्राण तनसे निकलें. ऐसी० ५

(१०)

(राग सीयाना कानड़ा)

जय गुरु आतम राम हमारे, चरणकमल सेऊं नित थारे.
जय गुरु आतम ॥ टेक ॥

विजयानंद गुरु दया तुमरीसे,
सब दुख जावत भाग हमारे. जय गुरु. ॥१॥
देश विदेश विहार करीने,
भवसागर भविजन बहु तारे. जय गुरु. ॥२॥
अष्टादश साधु संग लेके,
गुरजर देशमें आप पधारे. जय गुरु. ॥३॥
संयम शुद्ध लिया संवेगी,
मिथ्या ख्याल जन्मके जारे. जय गुरु. ॥४॥
भवसागरसे पार तरनको,
तुमरे चरण जहाज हमारे. जय गुरु. ॥५॥
तुम चरणांबुज भमर मेरो मन,
वयण सुधासम लागें प्यारे. जय गुरु. ॥६॥
आतम गुण मुझ घट प्रगटाओ,
तिलक नमे गुरु पाय तुमारे. जय गुरु. ॥७॥

(११)

(चाल—अंगरेजी बाजेकी)

हमारे प्राणनाथसे ये बीनती करो २ (टेक.)
इन चार चोर ओरसे तुम काहेको डरो,
जरा तो जोर शोर करी सामने परो. हमारे प्राण. ॥१॥
सुख नींद में क्या सो रहे कुछ गौर तो करो,
जिनंद देवसेव हृदय बीच में धरो. हमारे प्राण. ॥२॥
क्रोध मान माया लोभ दूर तो करो,
परमातमाका ध्यान करी पापको हरो. हमारे प्राण. ॥३॥
ज्ञान दर्श चरण धरी भाव आदरो,
सुमति संग रंग भंग कुमतिका करो. हमारे प्राण. ॥४॥
विजयानंद सुखकंद हृदय में भरो,
तिलक धरी प्रेम शिव सुन्दरी वरो. हमारे प्राण. ॥५॥

(१२)

(ठुमरी.)

भजन विन मानव मूढ मरे, भजन विन मानव मूढ मरे. टेक)
क्रोध लोभ मत्सर वस होके,
पाप से पिंड भरे, भजन विन मानव मूढ मरे. ॥१॥
धरम नाव विन भवसागरमें,

मूरख डूब मरे, भजन विन मानव मूढ मरे. ॥२॥
दान शील तप भाव न जाने,
कैसे दुःख टरे, भजन विन मानव मूढ मरे. ॥३॥
परनिन्दा हिंसा करनेसे,
दुर्गति बीच परे, भजन विन मानव मूढ मरे. ॥४॥
माया रहित भजे जो जिनको,
सो भवसिंधु तरे, भजन विन मानव मूढ मरे. ॥५॥
आतम लच्मी वल्लभ होवे,
तो मन हर्ष धरे, भजन विन मानव मूढ मरे. ॥६॥
तिलक ललित गुरुसेव करो नित.
सब ही काज सरे, भजन विन मानव मूढ मरे. ॥७॥

(१३)

कवाली, ताल ३ ।

जगतमें सार जिन पूजन, सबी व्यवहार झूठा है २ ॥ टेक ॥
लगा कर ध्यान जिनवरका, बना ले आत्मको पावन ।
विना जगदीश भक्ति के, सबी संसार झूठा है ॥जग० १॥
रोक विषयों से निज मनको, तोड़ आशाके बंधनको ।
जहां में दुःखका हेतु, ये कारोबार झूठा है ॥जग० २॥

जिन्होके मोहमें आके, हजारों पाप करता है।
सबी ये स्वार्थ के पोषी, उन्हो का प्यार झूठा है ॥जग०३॥
प्रभु सेवासे ले मेवा, तुझे परदेश जाना है।
तिलक तू भूलता है क्यों, ये सब घर बार झूठा है ॥जग०४॥

(१४)

कवाली, ताल ३।

नहीं है काम दुनियासे, मुझे जगदीश प्यारा है २ ॥टेक॥
विनश्वर भोग दुनियां के, नहीं है सार कुछ इनमें।
समझकर रूप अविनाशी, इन्हें दिलसे बिसारा है ॥नहीं०१॥
महा संसार सागरमें, सदा विषयोंकी लालचसे।
अनंता काल दुनियामें, व्यर्थ मैंने गुजारा है ॥नहीं०२॥
स्वजन बंधु सगे सारे, सभी हैं स्वार्थ के प्यारे।
इन्होंसे मैं तभा हो कर, किया अब तो किनारा है ॥नहीं०३॥
विषयरस भोग जानो रोग, आतमरूप साधनमें।
विना सद्धर्म के जगमें, न चेतनको सहारा है ॥नहीं०४॥
स्वप्न सम जान कर जगको, लिया पैछान शिवमगको।
रहूँ निश्चल सदा इसमें, तिलकने यह विचारा है ॥नहीं०५॥

(१५)

कवाली ।

छोड़ संसारकी माया, अरे नादान परदेशी,
इसीको तू पराई जानरे नादान परदेशी ॥ टेक ॥
पसारा क्यों फलाता है, तुझे अकसर तो जाना है ।
एक दो दिनका है महेमानरे नादान परदेशी ॥१॥
जिन्हे तू मानता अपने, न तेरे संग आवेंगे ।
चलेगा साथ धर्मध्यानरे नादान परदेशी ॥२॥
किसी दिन कूचका डंका, बजाना ही तुझे होगा ।
ये दुनियाको सग तू मानरे नादान परदेशी ॥३॥
न दुनिया में तेरा कोई, किसीका तू नहीं प्यारा ।
समझकर खोज आतमज्ञानरे नादान परदेशी ॥४॥
बने वल्लभ तेरा चेतन, तिलक सम उन्नति पावे ।
करे जो देवके गुणगानरे नादान परदेशी ॥५॥

(१६)

तर्ज कवाली, ता. ३ ।

अरे दे छोड़ निद्रा मूढ, अब तो कूच तेरा है ।
गयी है बीत सब रजनि, हुआ अब तो सवेरा है
॥ टेक ॥

तुझे तो दूर जाना है, न माथीका ठिकाना है ।
जरा हुशियार हो चलना, राह चोरोंने घेरा है ॥
॥ अरे० १ ॥

सबी संसार परिवारा, पिता माता सुता दारा ।
इन्हें मत जान तू अपने, यहां कोई न तेरा है ॥
॥ अरे० २ ॥

छोड़ दे मोहकी माया, जिसे तू देख भरमाया ।
ये दुनियांकी सराके बीच, दो दिनका बसेरा है ॥
॥ अरे० ३ ॥

तुझे निज देश जाना है, नहीं दमका ठिकाना है ।
दीवाना हो गया क्यों, जान यह धन माल मेरा है ॥
॥ अरे० ४ ॥

मोहकी नींदमें सोया, जो था निज द्रव्य सो खोया ।
बाद सिर पीट कर रोया, नहीं यह काम तेरा है ॥
॥ अरे० ५ ॥

त्याग घर बार मायाको, पिता माता को नायाको ।
तिलकने तो लगाया, वीरके कदमोंमें डेरा है ॥
॥ अरे० ६ ॥

(१७)

कवाली, ताल ३।

खिला जो पूर्व दुनियामें, कहां है अब चमन वैसा
२ ॥ टेक ॥

प्रथमसे ब्रह्म व्रतधारी, विवाह के आठ संग नारी।
हुआ जंबू सदाचारी, कहां है आज जन वैसा
॥ खिला० १ ॥

रहे वेश्या के घर जाके, व्रती शकटालके नंदन।
न मनसे भी चले योगी, कहां है आज मन वैसा
॥ खिला० २ ॥

विमाता के करानेसे, हुआ बनवास रघुवरका।
गया था साथ ही लछमन, कहां है अब स्वजन
वैसा ॥ खिला० ३ ॥

भजनमें लीन हो प्रभुके, लिया पद उच्च रावनने।
चढ़ाई तार नाडीकी, कहां है अब भजन वैसा ॥ खिला० ४ ॥

तिलक बन तीन दुनियांके, चले जो राह मुक्तिमें।
हुवे सिद्धार्थके सूनु, कहां है अब गमन वैसा ॥ खिला० ५ ॥

(१८)

कवाली ताल ३ ॥

तुझे क्या काम दुनियासे, सबीको सीस कूटन दे २ ॥टेक॥

बहन भाइ सुता दारा, सबी है स्वार्थ परिवारा।
निजात्म रूप साधनमें, अगर छूटे तो छूटन दे ॥
तुझे० ॥ १ ॥

तेरा गुणरूप अविनाशी, विनश्वर रूप दुनयांका।
ज्ञानसे भर्मका भांडा, अगर फूटे तो फूटन दे ॥
तुझे० ॥ २ ॥

लगाकर ध्यान चरणोंमें, प्रभुके लीन हो चेतन।
सबी संसारका सगपन अगर छूटे तो छूटन दे ॥
तुझे० ॥ ३ ॥

जिनेश्वर देवकी सेवा, चखावेगी तुझे मेवा।
इसे ना छोड़ना बंधु, अगर छूटें तो छूटन दे ॥
तुझे० ॥ ४ ॥

ज्ञान साबुन क्रिया पानी से धोकर साफ कर दिलको।
तिलक यों कर्मका बंधन, अगर टूटे तो टूटन दे ॥
तुझे० ॥ ५ ॥

(१९)

गजल–ताल ३ ।

बंदे तू सोच तेरा क्या हाल हो रहा है ।
अपनेको भूल कर तू, हैरान हो रहा है ॥ टेक ॥
धन माल पुत्र दारा, झूठा सभी पसारा ।
जिनमें तू मस्त होकर, निज काल खो रहा है
बंदे० ॥ १ ॥
इनमें न कोई तेरा, जिन मानता तू मेरा ।
माया की मय को पीके, पागल क्यों हो रहा है ॥ बंदे० ॥२॥
करता है मेरा मेरा, तन भी नहीं है तेरा ।
जिसको तू खूब मलमल, साबुनसे धो रहा है ॥ बंदे० ॥३॥
चोरोंसे माल तेरा, पलपल लुटा रहा है ।
मद मोह नींदमें तू, गाफल हो सो रहा है ॥ बंदे० ४ ॥
अब मानके तिलकका, कहना तू चेत चेतन ।
विषयोंकी धारमें क्यों, जीवन बहा रहा है ॥ बंदे० ५ ॥

(२०)

गजल, ताल ३ ।

दुनियांका रंग देखो, भूला फिरे गँवारा ।
आंखोंमे देखता जो, झूठा सभी पसारा ॥ टेक० ॥

आवेगा काल जिसदम, उस दम तुझे जरा भी ।
देवें नहीं सहारा, धन माल पुत्र दारा ॥ दुनियां० १ ॥
कर ख्याल हाल निजका, क्यों मोहमें पड़ा है ।
बिन धर्मके जगतमें, फिरता है मारा मारा ॥ दुनिया०२ ॥
विषयोकी वासनासे, कर्मोंका भार लेके ।
पापों में चित्त देके, नरकोंमें जा सिधारा ॥ दुनियां० ३ ॥
कुछ पुन्यके उदयसे, पाया गति मनुजकी ।
अब तो जरा समझले, जिन देवका इसारा ॥ दुनियां०४॥
दुनियांके रंग सारे, जड़ रूप जान प्यारे ।
मनमें न क्यों विचारे, तेरा स्वरूप न्यारा ॥ दुनियां० ५ ॥
जिन देवसेव धारी, दुर वासनाको टारी ।
ले प्राप्त कर तिलक तू, भव सिंधुका किनारा ॥ दुनियां० ६ ॥

(२१)

गजल, ताल. दादरा.

जो गर्भ में पाई व्यथा, तुझे याद होके न याद हो २ ॥ टेक ॥
लटका रहा उलटा सदा, नव मास गरभावासमें ।
नाना व्यथा बहु विध सहीं, तुझे याद होके न याद हो ॥ १ ॥
पाकरके मानव जन्मको, बचपनमें खेल रमा रहा ।
निज आयु व्यर्थ गमा रहा, तुझे याद होके न याद हो ॥ २ ॥

कर प्राप्त योवनकी दशा, फिर मोहके बंधन बीच फसा।
व्यसनोंकी कीचड़ में धसा, तुझे याद होके न याद हो ॥ ३ ॥
जब तन पर छाई आन जरा, तब तृष्णामें लिपटाई परा।
तूने पापसे पिंड फजूल भरा, तुझे याद होके न याद हो ॥ ४ ॥
करना जो था सो भुला दिया, विषयोंमें मनको लगा दिया।
तूने मनुज जन्म गमा दिया, तुझे याद होके न याद हो ॥५॥
विन स्वार्थ किया तैं कर्म महा, विन धर्म अनन्ता दुःख सहा।
इस भांति तिलक जिन देव कहा, तुझे याद होके न याद हो ॥६

(२२)

गजल, ताल ३।

है चमक दुनियांकी यारो चंदरोज।
ना लगाओ दिलको इसमें चंदरोज ॥ है० टेक ॥
मोहमें जिसके लुभाके भूल बैठा धर्मको।
ये सभी जाहो जलाली चंदरोज ॥ है० १ ॥
काम क्यों करता बदीके तू सदा।
जिन्दगी तेरी जहांमें चंदरोज ॥ है० २ ॥
सैंकड़ों रावन बलीसे होगये।
वे भी दुनियांमें रहे थे चंदरोज ॥ है० ३ ॥

काम कर नेकीके इस धन मालसे ।
पास यह तेरे रहेगा चंदरोज ॥ है० ४ ॥

यह बहार संसारकी कायम नहीं ।
जैसे नौचंदीका मेला चंदरोज ॥ है० ५ ॥

ऐ तिलक समान करले कूचका ।
है यहां तेरा बसेरा चंदरोज ॥ है० ६ ॥

(२३)

कव्वाली.

समय विपरीत होने पर सभी विपरीत हो जाते ।
सदासे मित्र जोथे वे अभी शत्रु नजर आते ॥ टेक ॥
सुबह जब चांद पर आफत जमाती जोर है अपना,
उसे तब छोड़ कर तारे सभी भगते नजर आते. ॥१॥
जिसे उन्नतदशा में देख निज मस्तक झुकाते थे,
समय के फेरसे उसको अभी पैरोंसे ठुकराते ॥२॥
सदासे घूमते थे जिस चमनमें ऐस असरतसे,
समय विपरीत दुर्दिनमें वहां कांटे नजर आते. ॥३॥
विधि अनुकूल होने पर सूल भी फूल बन जाते,
समय प्रतिकूल होने से फूल भी सूल हो जाते. ॥४॥
विपत्ति और संपत्ति सदा कायम नहीं रहती,
तिलक यह जान समभावी सदा पंडित कहे जाते. ॥५॥

(२४)

कवाली, ताल ३ ।

विना सद्धर्म के प्यारे परमसुख कैसे पाओगे २ ॥ टेक ॥
नरककी वेदना भारी. सहन करना है दुसवारी,
उसीसे धर्म विन कैसे, तुम अपनेको बचाओगे. विना. ।१।
सदा दुनिया के धंदो में, फसे धन मालको पाकर,
मगर सत्कर्म विन कैसे, गति मानवकी पाओगे. विना. ।२।
जगतकी मोहनी माया, जिसे तुम देख भरमाये,
नहीं है सार कुछ इसमें, यहां सब छोड़ जाओगे. विना.।३।
क्रिया विन ज्ञान दुखदाई, वृथा है ज्ञान विन किरिया,
विना दोनोंके अविनाशी, परमपद कैसे पाओगे. विना. ।४।
तिलक अब त्याग कर शखी, करो संसारमें नेकी,
करोगे आत्मको पावन. कि जो जिनवरको ध्याओगे. विना.।५।

(२५)

श्री ललितविजयजी महाराज कृत संस्कृत श्री हेमचंद्राचार्य
महाराजकी स्तुति.

गतवान् स हेमचंद्रः रूपार्द्धिजित सुरेंद्रः
एकादशांग धर्ता—मिथ्यात्व तिमिर हर्ता,

संसार सिन्धु तर्ता शिव रमणी रमण कर्ता. ॥१॥
जिननाथ पाथनेता मही मंडलं विजेता,
मदनारि अन्त कर्ता शीलांग गुप्ति चर्ता. ॥२॥
सुरशैल सम सुधीरं—नदीनाथवत् गभीरं,
भवसिंधु प्राप्त तीरं प्रणतोस्मि वीरवीरं ॥३॥
जैनेंद्र धर्म ज्ञाता वसुधातले विख्याता,
निखिलांगि प्राणत्राता भूपाल धर्मदाता. ॥४॥
इत्थं स्तुताः खलु प्रभुश्रीहेमचंद्राः
भक्त्या निबद्ध पटुवाक्य प्रयोग युक्त्या
भूभृत् प्रबोध जनिताखिल धात्री मोदात्
मोदं सदा चिन्मयं ललितं दिशन्तु ॥५॥

गहुली.

चाल—अहांनी अहां पासजी मुज मलियारे ॥

चलो गुरु वांदवा सखी जइयेरे ।
वंदनथी शिव सुख लहिये. चलो गुरु० ॥ टेक० ॥
गुरु पंच महाव्रत धारी रे, कुमति मोह माया जारी रे.
जेने त्यागी छे कंचन नारी. चलो गुरु० ॥ १ ॥

वाणी अमृतरस बरसावे रे, जिनराजनो तत्त्व बतावे रे.
भविजन मनने अति भावे. चलो गुरु. ॥ २ ॥
दई बोध मिथ्या मत जारे रे, सुध मारगने विस्तारे रे.
निष्कारण भविजन तारे. चलो गुरु. ॥ ३ ॥
गुरु सर्व सचितना त्यागी रे, जेनी अन्तर रटना जागी रे.
संसार थकी वैरागी. चलो गुरु. ॥ ४ ॥
एवा मुनिवरना गुण गावोरे, निज आतम वल्लभ पावोरे,
कहे तिलक ललित गुरु ध्यावो. चलो गुरु. ॥ ५ ॥

(देशी—दीठा पारसनाथ सौभागी रे.)

दीठा गुणवंत सुगुरु सौभागी रे.
मारी पुन्य उदय दशा जागी रे. दीठा गुणवंत (टेक)
बालवयमां दीक्षा लीधी रे, गुरुजीनी सेवा बहु
कीधी रे. दीठा गुणवंत ॥ १ ॥
संस्कृत न्याय आदि विद्या भणिया रे,
थया तत्वज्ञानना दरिया रे. दीठा गुणवंत ॥ २ ॥
विहार करी देश देश रे,
कर्या धर्मरागी अनेक रे. दीठा गुणवंत ॥ ३ ॥
पृथवी पावन करता आया रे,
गुजरात देश मन भाया रे. दीठा गुणवंत ॥ ४ ॥

बीजापुर आप पधार्या रे,
श्रावकना झगडा टाळ्या रे. दीठा गुणवंत ॥ ५ ॥
गुरुजी कीधा बहु उपकार रे,
सहु संघने हर्ष अपार रे. दीठा गुणवंत ॥ ६ ॥
जे प्रेमे गुरुगुण गावे रे,
आतम लक्ष्मी ते पावे रे. दीठा गुणवंत ॥ ७ ॥
गुरु ललित वल्लभ मन भाया रे,
धरी हर्ष तिलक गुण गाया रे. दीठा गुणवंत ॥ ८ ॥

साहेली सांभळो गुरुवानी रे.
ए तो भवभवमां सुखदानी साहेली. (टेक)
पंजाब देश गुरु जाया रे, उत्तम क्षत्रीय कुल पाया रे,
रुपादेवी मात मन भाया, साहेली सांभलो ॥ १ ॥
बालवयमां दीक्षा लीधी रे, संसार जलांजली दीधी रे;
जिनवाणी सुधा जेने पीधी. साहेली सांभलो ॥ २ ॥
सखी पंजाब प्रथम उधार्या रे, पछी गुरजरदेश पधार्या रे;
दई देशना भविजन तार्या. साहेली सांभलो ॥ ३ ॥
गुरु नामे मंगलकारी रे, जेनी वाणी सुधा सम प्यारी रे;
भविजन मनने हरनारी. साहेली सांभलो ॥ ४ ॥

गुरु विजयानंद सूरिराया रे, पूरव पुन्ये करी पाया रे;
जेने कुगुरु कुपंथ मिटाया. साहेली सांभलो ॥ ५ ॥
जे आतमना गुण गावे रे, आतम वल्लभ ते पावे रे;
कहे तिलक भ्रमण मिट जावे. साहेली सांभलो ॥ ६ ॥

जागृति.

गजल—ताल ३

जागो न जैन बंधु जागा है देश सारा ॥ टेक ॥
करना समाज सेवा, तुम हो भुलाके बैठे,
अब मंद हो रहा है, पुरुषार्थ यों तुम्हारा. जागो ॥१॥
हा हो रही है हानि, तबसे समाज भरकी,
कर्त्तव्य पथसे जब से, तुमने किया किनारा. जागो ॥२॥
निज स्वार्थ में न पड़ते, परमार्थता में अड़ते,
तो उन्नति में होता, जैनी समाज सारा. जागो ॥३॥
वीरत्व लेश तुम में, कुछ भी नहीं रहा क्या,
जो इस तरह से तुमने, है आज मौन धारा. जागो ॥४॥
निद्रा से अब तो जागो, व्यसनों को शीघ्र त्यागो,
लो लक्षमें उसी को, है साध्य जो तुम्हारा. जागो ॥५॥

ए वीर पुत्र प्यारे!, बन कर के वीर सारे,
हिल मिल के अब करो तुम, निज कौम का सुधारा.
जागो. ॥ ६ ॥

उपकार मय हृदय हो, परदुःख में सदय हो,
जिन धर्म का उदय हो, ऐसा करो विचारा. जागो.॥७॥
साधर्मी जो तुम्हारे, फिरते हैं मारे मारे,
लाओ दया उन्हों पर, तन धन से दे सहारा. जागो. ॥८॥
सब भिन्न भाव छोड़ो, मन ऐक्यता में जोड़ो,
होवेगा विश्वभर में, आदर तभी तुम्हारा. जागो. ॥९॥
पुरुषार्थ कर दिखाओ, कर्त्तव्य कर बताओ,
ए जैनवीर पुत्रो, करता हूं मैं इशारा. जागो. ॥१०॥

॥ इतिश्री ॥

श्रीवीतरागायनमः ॥

॥ मंगतराय भजन माला ॥

जिसको

लाला जैनीलाल जैन मालिक जैन

धर्म प्रचारक पुस्तकालय मुकाम

देवबन्द जि० सहारनपुर ने

बम्बई

टाइप से "विद्याप्रचारक

प्रेस" कानपुर

में छपाया

हमारे पास

सेती सर्व

प्रकार के छपे

हुए शुद्ध ग्रन्थ

मिलते हैं

मूल्य -)] १००० [वीर सम्बत् २४३४

॥ भूमिका ॥

श्रीमान पंडित मंगतराय जी नानौता जिला सहारनपुर के रहने वाले हैं उक्त पंडित जी को बालपन से ही गायन विद्या से अति प्रेम था और अपनी जुदा सैली बना रक्खी थी और हरेक पूजा प्रभावनादिक में सेली सहित जाया करते थे और अनुमान से सबही जगह इनकी सेली मुख्यमानी जाती थी आप कवि होने के अतिरिक्त पंडित भी हैं और अन्य मतावलम्बियों के साथ वादानुवाद करने में अच्छी योग्यता रखते हैं पंडित जी के बहुत से भजन हैं जो भारतवर्ष में माननीय हुए हैं उनमें से थोडे भजन छपवाते हैं शेष क्रम से छपवाए जांयगे।

जैनीलाल देवबन्द

श्रीवीतरागायनमः

अथ पंडित मंगतराय जी कृत भजन माला प्रारम्भः

॥ प्रथम भाग ॥

—:o:—

॥ १ ॥ चाल श्याम कल्यान और गौरी और भैरवी और आसावरी

पार उतारन हारे, प्रभु तुम पार उतारन हारे ॥ टेक ॥ धरमपोत में धरबहु भविजन, भवजल पार उतारे ॥ प्रभु० ॥ भवदधि उतरन को तोहि पूजें, सुर नर खग मिलसारे ॥ प्रभु० ॥ समोसरण लक्ष्मी युत सो हो । मुक्ति रमणि के हो प्यारे ॥ प्रभु० ॥ मंगत को अपना गिन तारो, आया शरण तिहारे ॥ प्रभु तुम पार उतारन हारे ॥

॥ २ ॥ पद उपदेशी चाल भैरवी ॥

अवसर जात अनारी समझ तेरो अवसर जात अनारी ॥ टेक ॥ नित्य निगोद से निकसत आया, भव कानन भटकारी ॥ समझ० ॥ दुर्लभ

मानुष देही पाई, इन्द्री पूरण धारी ॥ समझ तेरो० ॥ ऐसो अवसर पाय जो चूको, फिर मिल ना है भारी ॥ समझ० ॥ मंगत तोहे सतगुरु कहें चेतो, उमर गुज़र चली सारी ॥ समझ तेरो अवसर जात अनारी ॥

॥ ३ ॥ पद व्यवहार नय अपेक्षा चाल भैरवी ॥

भवि पाओ निज गुण, जिन गुण गाये से ॥ टेक ॥ मुनि जन निज पर भिन भिन देखें । प्रभु का ध्यान लगाये से ॥ भवि पाओ० ॥ बहुतेरे जनपार उतर गये । प्रभु की भक्ति बढ़ाये से ॥ भवि० ॥ मंगत भी निर जाणा है निश्चय । जिन पद में लौलाये से ॥ भवि पाओ निजगुण जिनगुण गाये से ॥

॥ ४ ॥ पद निश्चय नय अपेक्षा चाल आसावरी ॥

भवि पाओ जिनगुण, निज गुण ध्याये से ॥ टेक ॥ मुनिजन निज पर भिन भिन देखें । आतम ध्यान लगाये से ॥ भविपाओ० ॥ बहुतेरे जन पार उतर गये । अन भव ज्ञान बधाये से ॥ भवि० ॥ मंगत भी निरजाणा है निश्चय जिन पद में लौलाये में ॥ भविपाओ जिनगुण निजगुण ध्यायेसे ॥

॥ ५ ॥ तर्ज [illegible] राग लौंडी सिंभक्र २ पग धारियेरी ॥

प्रभु हमरी बांह पकरिये जी ॥ टेक ॥ प्रभु सरण तिहारी लीनी है । प्रभु सहाय हमारी करिये जी ॥ प्रभु हमरी० ॥ हम भवसागर में डूबे हैं । प्रभु अब कांठे लेधरिये जी ॥ प्रभु० ॥ प्रभु ऐसी (पंचम्) गत में पहुंचा दो । जहां फेर कभी नहिं मरिये जी ॥ प्रभु० ॥ प्रभु मंगत की अब अर्ज यही । मोरे अष्ट करम अरि (रिपु) हरियेजी ॥ प्रभु हमरी बांह पकरियेजी ॥

॥ ६ ॥ तर्ज स्त्री गायन, यह हमरी गली को जावेरी सोसनी आना ॥

मैं तुमरी सरण प्रभु आयाजी, करो मोहे पारा । करो मोहेपारा, हरो दुख सारा, मैं० ॥ टेक ॥ सुन सुन जिन धुनि गुण मुनि निज के । निज पर भेद बिचाराजी ॥ करो मोहे० ॥ नवनव द्रव्य सों धोये धोये जल मेंता । द्रव्य सों तुम पखाराजी ॥ करो० ॥ देहु देहु यही वर हरो हरो कर्म अरि । कर्मों ने दिया दुख भाराजी ॥ करो० ॥ जोड जोड़ हाथ माथ जाय जाय मांगत हैं । मंगनदास तिहाराजी ॥ करो मोहि पारा हरो दुख सारा, मैं तुमरी सरण प्रभु आयाजी ॥ करो मोहे पारा ॥

॥ ७ ॥ तर्ज महबूब जानीवे ॥

सुन बात प्राणी प्यारा, सुन बात प्राणीवे । सत गुरु की बानीवे, तूने कभी न मानी प्यारा । सुन बात प्राणीवे ॥ टेक ॥ जूवा भी खेळावे, किया मांस का आहारा । न करी गळानीवे ॥ सुन बात० ॥ मद पीके मस्त हुवा वे, वेश्या के घर सिधारा । धन धर्म्म की हानीवे ॥ सुन बात० ॥ कांधे बंदुकावे, खेळत फिरा शिकारा । तूने दया न आनीवे ॥ सुन० ॥ चोरा पराया धनवे, और सेई परकी दारा, जग ळाज न आनी वे ॥ सुन बात० ॥ ये सब विषय बुरेवे, सातों को तूने धारा । ऐसी दुरमती ठानीवे ॥ सुन० ॥ मंगत यह छोड़ सातों, जो चाहै निज सुधारा । सुन जैन बानीवे ॥ सुन बात प्राणी प्यारा, सुन० ॥

॥८॥ तर्ज, मोरा पिहरवा जाने न दे

मोहे कर्म मोक्ष में जाने न दें । जाने न दें सुख पाने न दें जी । टेक ॥ ळख चौरासी में भिरमावें, अति दुखदें । मोहे गत चारों में, अति० ॥ मोहे कर्म० ॥ दर्शन आवरणा दर्शन गुण ढक, देखन न दें । आतम स्वरूप मोहे देखन० ॥ मोहे कर्म० ॥ ज्ञानावरणी ज्ञान् आच्छा दो, जानन न दें । स्वपर भेद मोहे, जानन० ॥ मोहे० ॥ मोह तिमर मग छाय रहो है, सूझन न दें । मोक्ष मारग मोहे, सूझन० ॥ मोहे क०

अन्तराय मग रोक रहो है, फुरने न दे। आतम का बळ मोरा, फुरने० ॥ मोहे कर्म० ॥ चारों घाते केवल प्रगटै (उपजै) सब सूझै। लोका लोक फिर, सब० ॥ मोहे० । करम बेदनी साता असाता, हटने न दे। सुख दुख कारण, हटने० मोहे० ॥ आयू करम मोहे बंधन में डारा, छुटने न दे। पुद्गळ के बंध (कैकैद) से, छुटने० ॥ मोहे० ॥ नाम गोत्र बहु नाच नचावें, स्वांग भरें। नाना पर कारके, स्वांग ॥ मोहे०॥ घाति अघाति अष्ट जबनासे, शिव पद ळे। होके निरंजन, शिव० ॥ मोहे कर्म० ॥ मंगल कहै जिन यह पद पायो, जा पहुंचे। लोक सिखर पै, जा० ॥ मोहे कर्म० ॥ मन बच तन हम वंदें तिनको, उस पद के। अर्थी हैं हम उसही पदके ॥ मोहे कर्म मोक्ष में जाने न दें। जाने न दें सुख पाने न दें जी ॥

॥ ९ ॥ तर्ज, सैयां तोरी गोदी में मैं गेंदा बन जाऊंगी ॥

(सुमति नारि की चेतन पियासों वीनती)

चेतन जी चेतो थारे मैंही काम आऊंगी ॥ टेक ॥ सुमति नाम मैंने पायो है जगत में। जगत से काढ़ तुम्हें मुकति पहुँचाऊंगी ॥ चेतन जी चेतो० ॥ जगत में भ्रमत हो सौतन कुमति संग। काळ लब्धि पाय कर्म रंगको भगाऊंगी ॥ चेतन० ॥ आपा पर भेद को तू नेक न पिछानत है। जीव जीव भिन भिन तोहि दरसाऊंगी ॥ चेतन

जी चेतो० ॥ मंगत सुमति कहे छांडोजी कुमति संग । महा दुख भोगो और कहा समझाऊंगी ॥ चेतन जी चेतो थारे मेंही काम आऊंगी ॥

॥ १० ॥ तर्ज, सागर पानी को गई, पानी को गई जल भरने को गईरी ॥

जिनवर (नागर) वानी सुख मई, वानी सुख मई जिन वानी सुख मईरी ॥ टेक ॥ यही जिन बानी है सुख सागर । सुन मन उमड़े आनंद बादर ॥ नागरबानी० ॥ यही जिन बानी जगत उजागर । इन्द्रादिक पूजें करें आदर ॥ नागरबानी० ॥ मंगत कन्मन जिन धुनि बादर । प्रफुल्लित होवें भविजन दादर ॥ नागरबानी सुखमई,

॥ ११ ॥ तर्ज प्रभाती, उठ पिया जागरे अकेली डरलागे ॥

जिया इन्हें त्यागरे, विषय । हैं अहिकारे ॥ टेक ॥ तैं अनादिसों बहु दुख भोगे । इनसों करके रागरे ॥ विषय हैं० ॥ नरभव तोहि इम आनमिल्यो जिम ताली बजावत कागरे ॥ विषय० ॥ २ ॥ अबलों भिम्यो रागद्वेस बस । अब तो धर बैरागरे ॥ विषय० ॥ मोह नींद में सोये अनादी । अब तो जियातू जागरे ॥ विषय० ॥ मंगत जिन विषयनि को त्यागे । तेही जिया बड़भागरे ॥ विषय हैं अहिकारे, जियाइन्हें त्यागरे ॥

॥ १२ ॥ जिनबानी स्तुति

दोहा॥ ऐ भवि जीवो सोच कर, देखो भ्रम बुधटार। जग में जिन बानी यही, है जिय तारन हार ॥ [ग़ज़ल] भविक जन के लिये है जग में तरनहार जिन बानी ॥ नहीं है सार कुछ जग में, यही है सार जिन बानी ॥ टेक ॥ जिन आज्ञा इसकी पाळी है, सभी आपद को टाळी है। यह सब दुख हरनेवाली है, परम सुखकार जिन बानी ॥ भविकजन० ॥ अगर ऐसा कुचारी हो, कि नरकादिक की त्यारी हो। इसे गर उर में धारी हो, तो ले उद्धार जिन बानी ॥ भविक० ॥ इसी बिन होचुके फेरे, तेरे दुरगति में बहुतेरे, यही हितकार है तेरे, तो अब उरधार जिन बानी ॥ भविक० ॥ तू आपापरमें माने है, नहीं आपे को जाने है। अलग [भिन्न] निज पर बताने है, यह बारंबार जिन बानी ॥ भविक० ॥ अगर चेतन तू है दाना (स्याना) तो आपा पर में क्यों माना । यह सब तुझ से हैं बेगाना, बिना इक सार जिन बानी ॥ भविक० ॥ रहा इस बिन तू हरजाई. बहुत मुशकिल से अब पाई। तू चल अब मोक्ष में भाई, ले मंगतल्यार जिन बानी ॥ भविक जनके लिये है जग में तारनहार जिन बानी ॥ नहीं है सार कुछ जग में,

॥ १३ ॥ तर्ज, नगर बसाजा बेगम रहो तेरा राज ॥

सरणे तोरे आयो परभू मोको पार उतार ॥ टेक ॥ भौदधि अगम जल याको नाहीं पार । टूटी सी यह नैय्या मोरी पड़ी मजधार ॥ सरणे तोरे० ॥ तुम तो अनेक तारै अब मोरी बार । काहे ढील कीनी प्रभु नेक दो सहार ॥ सरणे तोरे० ॥ दरब सो धोये लायो अष्ट परकार । अरज करत प्रभू (तुम को चढ़ायो प्रभू) अष्ट कर्म टार ॥ सरणे० ॥ मंगत मांगत तोसे यही हरबार । अतिंद्रय सुख जामें दीजै शिवसार ॥ सरणे तोरे आयो परभू मोको पार उतार ॥

॥ १४ ॥ तर्ज, कहांले जागायार मुझ परदेसन नूं ॥

कैसा भैया तू अचेत, होकर कै चैतन्य ॥ टेक ॥ बिषयनि के तू संग मेरे, रहता है आनंद । नहीं गहै शुधभाव को जो कटै करम के फंद ॥ होकर कै० ॥ जिन संग बहु दुख पाईयोरे, उनसै ही कीनी प्रीत । दूर उन्होंसे भागतारे, जो हैं तेरे मीत ॥ होकर कै चै० ॥ रीति कुरीती समझ तो, और समझत नीति अनीत । भेद ज्ञान धारे बिनारे. समझत सब बिपरीत ॥ होकर कै० ॥ भेद ज्ञान धारो सुधी, जो

शिव मारग समझाय । जासे ऊंच पदी कोई नाहीं, संगत सो पद पाय ॥ होकर कै चैतन्य, कैसा भया तू अचेत ॥

१५ तर्ज, रस्ते में काना घेरै खड़ा में काहे करूं तदबीररे

चलोरी सखी मिल देंगे बधाई, अब नका दिन आया है ॥ टेक ॥ नाभि राय घर मरुदेवी प्रिया, रिषभ देव सुत जाया है । पंद्रह मास से आस लगी थी, सो अवसर अब पाया है ॥ चलोरी० ॥ प्रभुका जनम भयोरी सखी, तिहुंलोक जीवन सुख पाया है । ऐरापति हस्ती सजाय कै, इन्द्र नगर में आया है ॥ चलोरी० ॥ सची जिन मात दई सुख निद्रा, प्रभु कूं गोद उठाया है । माया मई बालक रचकर, जिन माता गोद लिटाया है ॥ चलोरी० ॥ जाय इन्द्र की गोद दियो तब, फूला उर न समाया है। ऐरापति हस्ती पैथाप प्रभु इन्द्र मेरु ले धाया है ॥ चलोरी० ॥ पांडुक शिला सिंहासन ऊपर, प्रभू कूं ले पधराया है । इन्द्र चीरादधि जल देव निसे, हाथों हाथ मंगाया है ॥ चलोरी० ॥ सहस आठ कलशन जल प्रभू सिर, एकही बार ढुराया है । नहीं रही इक बूंद देवनि ने, सब जल मस्तक लाया है ॥ चलोरी० ॥ शची ने प्रभु सिंगार कियो फिर, इन्द्र प्रभू गुण गाया है । नेत्र हजार बनाय इन्द्र ने, प्रभु का रूप लखाया है

चलोरी० ।। मात पिता को लाय सौंप प्रभु, सब बिरतान्त बताया है । इन्द्र शची सुरदेवी सब मिल (जिन) मात तात गुण गाया है ।।चलोरी० ।। जिन स्तुति बहु करी इन्द्र ने, ताण्डव नृत्य रचाया है । प्रभु का जन्म कल्याण ठान कै, इन्द्र सुरग को धाया है ।। चलोरी० ।। धन धन उनके भाग जिन्हों ने, ऐसा अवसर पाया है । मंगत भविजन गान करन को, जन्म कल्याण बनाया है ।। चलोरी० ।।

।। १६ पद प्रभाती ।।

हो मोरी नैय्या पार लंघा, पार लंघादे शिवपुर का पुचादे पार० ।। टेक ।। तुम बिन कौन अब पार उतारै । सरना तेरा, आन लिया प्रभु शरणा तेरा, ।। हो मोरी० ।। इस जग में सबही स्वारथ के । माता पिता, सुत त्रिय भ्राता माता पिता ।। हो मोरी० ।। अष्ट करम बैरी संग मेरे । लीजे बचा, प्रभु मोको इनसे लीजे बचा ।। हो मोरी० ।। मगत की अब अरज यही है । पास बुला, प्रभु मोंको अपने पास बुला ।। हो मोरी० ।।

।। १७ ।। तर्ज, ।। स्त्रियों के गीतकी ।।

श्री जिन बानी है सार जगत् मैं । सार जगत् मैं सार जगत् मैं ।।

श्री जिन बानी ॥ टेक ॥ यहि जिनबानी, मोक्ष निशानी । है यहि तारनहार जगत् में ॥ श्री जिन ॥ १ ॥ भ्रम मिटावै यहि तो करावे । शुभ अरु अशुभ विचार जगत् मैं ॥ श्री जिन ॥ २ ॥ शेर--सब को दुनिया की हाविस ख्वार लिए फिरती है ॥ कौन फिरता है यह मुरदार लिए फिरती है ॥ जिन ध्वनि अप्रमपार परम सुखकार, है मेटनहार जगत् मैं ॥ श्रीजिन ॥ ३ ॥ दोहा ॥ द्वादशांग बानी नमूं, खट कायक सुखकार । जा प्रशाद शिव मग दिपै. पंचम काल मंझार ॥ बन्दू बारम्बार जगत् में ॥ श्रीजिन ॥ ४ ॥ कुमति बिनाशै, सुमति प्रकाशै । यहि जिया के हितकार जगत् मैं ॥ श्री जिन ॥ ५ ॥ याने पापी, बहु सन्तापी, मंगत दिए हैं उभार जगत् मैं ॥ श्री जीन ॥ ६ ॥

१८ तर्ज, मेरे अच्छे ढोला आनतो जगाई बैरी नींद मैं ।

श्री जिनवर स्वामी, आपसा न जानी तिहुं लोक मैं ॥ टेक ॥ एजी थारी बानी मी तो आनी स्वामी । और नहिं आनी तिहुं लोक मैं ॥ श्री जिनवर ॥ १ ॥ एजी थारी बानी ही प्रमाणी स्वामी । शिव की निशानी तिहुं लोक मैं ॥ श्री जिनवर ॥ २ ॥ एजी जाको गणधर मानी स्वामी । इन्द्रादिक मानी तिहुंलोक मैं ॥ श्रीजिनवर ॥ ३ ॥ एजी

जासे बहुते से प्राणी स्वामी। भए श्रद्धानी तिहुंलोक मैं ॥ श्रीजिनवर ॥ ४॥ एजी तारो मुझ से अज्ञानी को भी। मोसा न अज्ञानी तिहुंलोक मैं ॥ श्री जिनवर ॥ ५ ॥ एजी नहिं मंगत सा न मंगत कोई। तुमसा न दानी तिहुंलोक मैं ॥ श्री जिनवर ॥ ६ ॥

॥ १६ ॥ तर्ज, मूंगा तुझे लेदूंगा जिह्रो हो ॥

यह तो तेरी उलटी बान जियरा । अजी तूने करि शत्रू संग यारी। वे यह तो तेरी उलटी ॥ टेक ॥ एजी तू तो बिषयिन मैं नित राचो। जिन संग हुवा है बिरान जियरा ॥ यह तो ॥ १ ॥ अरे जिया शुद्धभाव नहि धरता। जासे हो निर्वाण जियरा ॥ यह तो ॥२॥ अरे जिन बानी सुन बहु तिरगए। तू भी कर श्रद्धान जियरा ॥ यह तो ॥ ३ ॥ अरे बिना जिनमत पार न उतरे। यह निश्चय कर जान जियरा ॥ यह तो ॥ ४ ॥ अरे अब जिन चरणन चित धारो। तज करके अभिमान जियरा ॥ यह तो ॥ ५ ॥ अरे तू मंगत जिन गुण गाले। जासे हो कल्याण जियरा ॥ यह तो ॥ ६ ॥

॥ २० ॥ चाल बिहाग ॥

बिनय शास्त्र की करैं जो सांची । ते जिय सुख पावैं अधिकाई ॥ टेक ॥ आप पढ़ैं औरन को पढ़ावैं, बिनय प्रभावना अंग बढ़ावैं । ऐसा धर्म कभू ना छुपावैं, जा बिन जिय भव बन भटकाई ॥ बिनय ॥ १ ॥ है जग में सांची जिन बानी, जो जो याके भए श्रद्धानी । क्रोधी कपटी लोभी मानी, तिन तिन जिय शिव पदवी पाई ॥ बिनय ॥ २ ॥ मंगत यामें फेर न जानो, ज्ञान बिनय सोई मुख्य है मानो । याते याको रंच न हानो, वाह्य बिनय के कारण भाई ॥ बिनय ॥ ३ ॥

॥ २१ ॥ तर्ज, क्या देखे मोरी ओररे चलाजा ॥

श्री जिन नाम जपोरे नित प्रानी ॥ टेक ॥ श्री जिन नाम भजन ते जियरा, होजावोगे आतम ध्यानी ॥ श्री जिन० ॥ १ ॥ श्री जिन नाम भजन बिन अवसर, क्यों खोवे बिरथा अज्ञानी ॥ श्री जिन० ॥ २ ॥ श्री जिन नाम चिन्तामणि सदृश, मंगत की पूरै मन मानी ॥ श्री जिन नाम० ॥३॥

॥ २२ ॥ तर्ज, सुनरे सिपैया प्यारे सिपैया प्यारे ॥

लश्कर गया बड़ी दूर ॥ सुनरे ॥

हांजी जिनजी सरण मैं थारी । सरण मैं थारी, सरण मैं थारी ॥ मो को राखों निज पास ॥ जिनजी० ॥ १ ॥ हांजी भवका, यह जल है भारी । यह जल है भारी, यह जल है भारी ॥ नहीं सोझे याकापार ॥ भवका० ॥ २ ॥ हांजी तुमने, बहुत जन तारे । बहुत जन तारे, बहुत जन तारे ॥ काहे ढील मोरी बार॥तुमने० ॥ ३ ॥ हांजी हमरा, नहीं कोई साथी, नहीं कोई साथी । नहीं कोई साथी । पिता माता सुत नार ॥ हमरा० ॥ ४ ॥ हांजी तुमरा, यह मंगत दासी, यह मंगत दासी, यह मंगत दासी ॥ याको दीजे शिव थान ॥ तुमरा० ।५।

इति पंडित मंगतरायजी रचित भजनमाला सम्पूर्णम् ।

विज्ञापन

हमारे पास सर्व प्रकार के छपे हुए ग्रन्थ हर समय रहते हैं आवश्यकता पूर्वक मँगवाइये । बड़ा सूचीपत्र मगाँकर देखो ।

ज्योतीप्रशाद भजनमाला—इस में उत्तम उत्तम भजन नाटक थीयेटर की चाल में है ≈)

मँगतराय भजनमाला—इस में उपदेशी तथा नई चालों के बहुत गम्भीर भजन हैं ≈)

न्यामतसिंह भजनमाला—इस में नाटक थीयेटर तथा नई चालों के भजन छांट छांट कर लिखे है देखने लायक हैं ≈)

भजन माला—इस में द्यानतराय भागचन्द आदिक कवियों के भजन है ≈)

दौलत विलास बड़ा—इस मे पंडित दौलतराम के कुल भजन छहढाले सहित हैं सुंदर है ॥)

प्रभुविलाश—इसमें नाटक थीयेटर आदिक चालों के उत्तम उत्तम भजन हैं ≈)॥

तेरहद्वीप पूजन पाठ विधाध—यह महान ग्रंथ मोटे चिकने सपेद कागज पर ग्रंथा-कार छपाया है और सुंदर जिल्द बंधाई है अति उत्तम हरेक जैनी को रखने योग्य है मूल्य २)

सिद्धक्षेत्र सत्रुंजयजी पूजन पाठ—इस मैं पूजाजी के अलावा दर्शन पाठ रस पृत्याग आदिक बहुत विषय हैं जिल्द सहित मूल्य ≈)

णमोकारमंत्र रंगीन बेलबूटेदार—यह महान मंत्र हरेक जैनी को अपने मकान तथा बैठकों में अवश्य चौकटे मैं लगाना चाहिये ≈) दश पृति ।≈)

दर्शन कथा बड़ी ।≈) शील कथा बड़ी ≋) दान कथा ≋) रविवृत कथा ≈) रक्षा बंधन कथा ﹀) निशभोजन कथा ≈) निशभोजन कथा छोटी)। जैनवृत कथा संग्रह जिस मे नौ कथी हैं ≋) पंचमंगल पाठ)॥। विषापहार भाषा)॥। भाषा पूजन संग्रह जिस मैं १७ पूजा है ।≈) नित्य नियम पूजा बड़ी भाषा संस्कृत दोनो ।﹀) सुकमाल उपन्यास ।≈) सुक्तमुक्तावली ।) जैन बालबोधक पृथमभाग ।) तथा दूसराभाग ॥) जैन बालबोध व्याकरण प्रथमभाग ।≈) दूसरा ।≈) द्रव्यसंगृह सटीक ।≈) जैनं विवाह पधती बड़ी ॥।) सप्तरिषी पूजा)॥ भक्तामर संस्कृत भाषा ﹀) होलीसंगृह)॥ सूत्रजी मूल्य ﹀) बारहमासा राजल)॥ बारहमासा सीता)। बारहमासवर्जदंत)। बारहमासा नेमनाथ)॥ बारहमासा मुनिराज)। संकटहरण बिनती)। जैनबालगुटका)॥ प्रश्नोत्तर नेमनाथ)॥ आलोचना पाठसटीक)॥ सामायक)। दश आरती)। दुखहरण बिनती)। दर्शनपाठ ।।) व्याह नेमनाथ)॥ साखोचार)। परमार्थ जकड़ी)॥। निर्वाणकाड भाषा गाथा तथा पूजन)॥। जिनगुणमुक्तावली)॥। अध्यातम पचासा)। एकीभाव कोष सहित ﹀)॥

इनके सिवाय बहुत गृंथ मौजूद हैं।

पुस्तक मँगाने का पता—

लाला जैनीलाल जैन मालिक जैनधर्म

प्रचारक पुस्तकालय मु० देवबन्द जि० (सहारनपुर)

* वन्दे जिनवरम् *

विनती-भजनसंग्रह

२ भाग।

प्रकाशक:—

ला० मनीराम नन्हूलाल, जैन

जैन स्टेशनरी हाउस, दरीबा-देहली।

पं० आनन्दराम के प्रबन्ध से

सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय देहली में मुद्रित।

मूल्य -)॥

॥ वन्दे वीरम् ॥

व्यापारियों को सूचना

हमारे यहाँ सर्व सामान स्टेशनरी जोकि दफ्तरों स्कूलों में खर्च होती हैं कागज सर्व प्रकार का फुलिसकेप बादामी बैंक-पेपर नोट पेपर आदि, रजिस्टर रूलदार खानेदार सादे प्यून-बुक कोपिंगबुक वगैरह, लिफाफे कार्ड हर किसम के, स्याही स्वदेशी काली स्याही हर किसम की लाल हरी विलू विलेक टिकिया फलूड कोपिंग आदि सर्व प्रकार बढ़िया घटिया, तथा होन्डल पिन्सल सिलेटें बही निब दवात पैमाने रूल कलमदान चाकू बक्स जमेटरीबक्स कलरबक्स कोपियाँ सर्वप्रकार की स्टेशनरी सामान जोकि बम्बई व दिसावर से सीधा आताहै, और बहुत सा सामान हम खुद तैयार कराते हैं यही कारण है कि हम अपने खरीदारों को हमेशा अच्छा और सस्ता माल भेजते हैं जिस किफायत से थोक के खरीदारों को माल भेजते हैं उसी तरह से हम फुटकर ग्राहकों को भी रवाना करते हैं, माल हमेशा हमारे यहाँ ताजा और नयेर फैशन का तैयार रहता है आर्डर माफिक व नमूने माफिक माल भेजते हैं। और हमारेयहाँ सर्वप्रकार की स्वदेशी बनी हुवी शीशे की चिमनी तथा जैन पुस्तकें मिलती हैं।

आप एक बार माल मंगा कर आजमायश कीजियेगा।

पता:—पं० मनोराम नन्नूमल जैन

जैन स्टेशनरी हाउस बड़ा दरीबा देहली

ॐ

हितैषी भजन संग्रह।

मङ्गलाचरण

चाल—(नाटक) किस्मत सब पर लाती आफत, तू हितकारी नाथ जगत का महिमा तेरी अपरम्पार। सब के हित तुम सब जीवन को शिवमग दरसाया सुखकार। सूरज चन्दर इन्द्र सुरनर गावें गान तेरा उपकार। खन्डन कर पाखन्ड जगत् के दिखलाया सतका व्यवहार॥

सब भ्रम मिटा दिया, सत्पथ दिखा दिया। मोहतम हटा दिया, धर्म लगादिया॥ तेरे नाम को रटें, मिथ्यात से हटें। पापों से हम छुटें, न्यायमय करम करें, तू हितकारी०॥ इति॥

आरती २

प्रथम आरती।

यह विधि मंगल आरती कीजे। पञ्च परम पद भजि सुख लीजे॥ टेक॥ प्रथम आरती श्री जिनराजा। भवदधि पार उतार जिहाजा॥ १॥ दूजी आरती सिद्धन केरी

सुमिरण करत मिटे भव फेरी ॥ २ ॥ तीसरी आरती सूर मुनिन्दा । जन्म मरण दुःख दूर करिन्दा ॥ ३ ॥ चौथी आरती श्री उवज्झाया । दर्शन देखत पाप पलाया ॥ ४ ॥ पांचवी आरती साधु तुम्हारी कुमति विनाशन शिव अविकारी ॥ ५ ॥ छटी ग्यारह प्रतिमा धारी । श्रावक बन्दों आनन्दकारी ॥ सातवीं आरती श्री जिन वाणी । द्यानत स्वर्ग मुक्ति सुखदानी ॥ ७ ॥

द्वितीय आरती ३

आरती श्री जिनराज तुम्हारी । कर्मदलन संतन हितकारी ॥ टेक ॥ सुर नर असुर करत तुम सेवा तुम ही सब देवनके देवा ॥१॥ पंच महाव्रत दुद्धर धारे । राग दोष परिणाम विडारे ॥ २ ॥ भव भयभीत शरण जे आये । ते परमारथ पन्थ लगाए ॥ ३ ॥ जो तुम नाम जपै मनमाहिं । जन्म मरण भय ताको नाहिं ॥ ४ ॥ समोशरण सम्पूर्ण शोभा । जीते क्रोध मान मद लोभा ॥ ५ ॥ तुम गुण हम कैसे कर गावें । गणधर कहत पार नहिं पावें ॥ ६ ॥ करुणा सागर करुणा कीजे । द्यानत सेवक को सुख दीजे ॥ ७ ॥

तृतीय आरती ४

आरति कीजै महाराज चरण की । गुण पूरण

सब दोष हरण की ॥ टेक॥ पहिली आरती गरभ फुकरण की। षटनव मास रतन बरसन की (आरती०) १। दूसरी आरति जन्म चरण की, मति श्रुति अवधि त्रि ज्ञान फुराण की ॥ २ तीसरी आरती तपोचरण की, वेद घाति था कर्म हरन की ॥ ३ ॥ चौथे केवल ज्ञान फुरण की, समो सरण धनपतीरचन की। पांचवीं आरती मोक्ष रमण की, पंचकल्याणक नित्य चरण की ॥ ५ ॥ जो ये आरति पढ़े पढ़ावे, मन वांछितफल वा नर पावे।

नं० ५ भजन

ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति पदम सुपार्श्व की जय, चन्द्र पहुप शीतल श्रेयांस, जिन बासपुज्य महाराज की जय, विमल अनन्त धर्म हितकारी, सांतिनाथ महाराज की जै, कुंथुनाथ अरी मल्लि मुनिसुव्रत नमि नमिया महाराज की जय। नेमनाथ स्वामि पार्श्व जिनेश्वर। वर्द्धमान महाराज की जय ॥ जिनराज की जय ॥ इति ॥

नं० ६ भजन (प्रार्थना)

भगवन् मरुदेवी के लाल, मुक्ति को राह बताने वाले ॥टेक॥
लीना अवधपुरी अवतार छागया जग में आनन्दकार. बोले सुर नर जय २ कार सारे जिन गुण गानें वाले ॥ १

इन्द्रलोक सिंहासन कम्प्यो अनहद दुंद बजाई जी ॥ २ ॥
मोहन चरण नमत प्रभु जी के मोक्ष रमण फलपाई जी ॥ ३ ॥

नं० १०

हे जैन तेरी निद्रा कुम्भकरण से बढ़ रही है ।
सब ही ने उन्नति की तू सोती हो पड़ी है ॥ १ ॥
अब तो भी जाग प्यारी रोती समाज सारी ।
मेटें कुरीतियां बड़ी है दिल की बड़ी कड़ी है ॥ २ ॥
कई एक खुली सभाएं भाषण हुए अनेकों ।
रफतार वह त्रिढंगी पहले से भी बढ़ी है ॥ ३ ॥
करुणा की आड़ लेकर क्यों होली खेलती है ।
वेश्या को द्रव्य दे दें क्यों शान पर चढ़ी है ॥ ४ ॥
तेरे सपूत ही तो बन गये कपूत हैं अब ।
विधवा विवाह की धुन दिल में उनके गढ़ी है ॥ ५ ॥
खुर्राटे बुड्ढे होकर बालों को रंग के काले ।
गर्दन भी हिलती हो तो शादी की आपड़ी है ॥ ६ ॥
तेरे सपूत होकर तुझ पर करें निशाना ।
भगवान् विश्व चन्दा सूरज की यह घड़ी है ॥ ७ ॥
दया के मद्य में तू मदमाती हो रही थी ।
छुड़वाती आतिशबाजी तेरी अकल सड़ी है ॥ ८ ॥

बच्चे न जांय ब्याहे कर वृद्धि विद्या की तू ।
आ कार्य क्षेत्र में आ किस धुन में तू खड़ी है ॥ ९ ॥
भूखे हजारों मरते प्यासे हजारों फिरते ।
दिल में दया न तेरे क्या बिगड़ी खोपड़ी है ॥ १० ॥
अब तो भी नेक जागो गफलत की नींद त्यागो ।
हंसते खड़े हो क्यों पन्ना यह रोने की घड़ी है ॥इति॥ ११

११ हम वीर की संतान हैं ।

हम वीर की संतान हैं, हटकें न हरगिज जांयगे ।
कर संकटों का सामना, निज आत्मबल प्रगटायगे ॥ १ ॥
तूफान हो यमधाम हो, और मेघ मुसलधार हो ।
बिजली कड़कती हो भले, हम धैर्य ना छिटकांयगे ॥२॥
हो गड़गड़ाहट गन्ज की, खंजर चमकते हो भले ।
हम ढाल सीनों को बनाकर, कर्त्तव्य करते जांयगे ॥ ३ ॥
सब आसमां को छान लें, भूखंड छोड़ेंगे नहीं ।
हम साध्य साधन के लिए, पाताल में घुस जांयगे ॥४॥
आ देव दानव देखले, इन्सान की क्या बात है ।
खुद बाजुओं के जोर से, नीचा उन्हें दिखलायगे ॥५॥
संसार आगे बढ़ चला, संभव नहीं हम ना बढ़े ।
पीछे सभी को छोड़कर, हम शीघ्र आगे जांयगे ॥६॥

सब सहचुके हम आपदायें, और सह सकते नहीं।
आपत्तियों के मार्ग को ही, सर्वथा तज जावेंगे ॥७॥
निज घर हमारा मुक्ति है, आनन्द पावेंगे वहीं।
वसु कर्म मलको नाशकर, सच्चा स्वराज्य जमायेंगे ॥८॥
जिन धर्म को धोरो, अहिंसा धर्म का झंडा उठा।
हम विजय दुन्द भी से उसे, संसार में फहरायेंगे ॥९॥ इति

नं० १२

(जैन जाति की दशा और उस के सुधार का उपाय)

ए कौम के प्यारो, ए कौम के दुलारो।
ए कौम के जमानो, ए कौम के कुमारो॥
गफ़लत की नींद छोड़ो, सुस्ती को अब उतारो।
बैठो संभल के अब कुछ कौमी दशा निहारो॥
पहुंचे कहां थे इस दम इस बात को विचारो॥१॥
पहले हमारा मस्तक, ऊंचा जहान में था।
सारे जहां का नकशा, अपने ही ज्ञान में था॥
दौलत का ढेर सचमुच कुनों मकान में था।
अमृत कहें हैं जिसको, अपनी जबान में था॥
वीरत्व का नमूना बाकी कमान में था॥२॥
चरचा धर्म की करना, बस काम था तो यह था।

दुख को पराये हरना, बस काम था तो यह था ॥
विपना में धीर्य धरना, बस काम था तो यह था ।
पूरा वचन को करना, बस काम था तो यह था ॥
सच्चे धर्म पर मरना बस काम था तो यह था ॥२॥
श्रेयांस कैसे दानी, थे वंश में हमारे ।
सकुमाल कैसे ध्यानी, थे वंश में हमारे ॥
अकलंक कैसे ज्ञानी, थे वंश में हमारे ।
लाखों धरम के बानी थे, वंश में हमारे ॥
धर्मज्ञ सारे प्राणी, थे वंश में हमारे ॥४॥
अब वंश की हुई है, अब ही खराब हालत ।
घेरे हुये हैं हम को, चारों तरफ से शामत ॥
घर घर में आ बिराजी, कम्बख्त अब जहालत ।
जाती रही है उल्फत, और मिट गई है दौलत ॥
अफसोस हो गई है रुखसत हमारी ताकत ॥५॥
वह बल कहां गया है, बांकी कमान वालो ।
वह गुण कहां गया है, आगम के ज्ञान वालो ॥
वह जस कहां गया है, कीरत महान वालो ।
वह धन कहां गया है, हीरों की खान वालो ॥
अफसोस सब लुटाया ऊंची दुकान वाले ॥६॥
ऐसान एक पल्ले, दौलत भला कहां फिर ।

पूछे न बात कोई, इज्जत भला कहां फिर ॥
लाठी को थाम चलना, ताकत भला कहां फिर ।
आपस में लड़के मरना, उल्फत भला कहां फिर ॥
महदुद खुद को रखना शोहरत भला कहां फिर ॥७॥
शादी में जर गवाना, अब काम हो गया है ।
रंडियों को ला नचाना, अब काम हो गया है ॥
फुलवारियां लुटाना, अब काम हो गया है ।
मुर्दों पे माल खाना, अब काम हो गया है ॥
गाली गलोज गाना, अब काम हो गया है ॥८॥
कौमी अनाथ बालक, दरदर फिरे हैं मारे ।
मरती है विधवा बहनें, भूखी बिलाप करे ॥
कितने ही दीन भाई, भूखे मरें हैं बिचारे ।
मांगे हैं भीख घर २ कफनी गले में डारें ।
अफसोस पर न रींगें जुं कान तक तुम्हारे ॥ ९ ॥
विद्या को कुछ न पूछो क्या चीज विद्या है ।
डर इस से लग रहा है, गोया यह कुछ बला है ॥
विद्या बिना न जाना हमने कि धर्म क्या है ।
पूछे जो कोई हमसे जिन धर्म चीज क्या है ॥
देंगे जवाब है सब, ग्रंथों में जो लिखा है ॥ १० ॥
ग्रंथों का ढंग सुनिये हमने जो करके छोड़ा ।

अलमारियों में उनको बस बंद करके छोड़ा ॥
नहीं धूप तक दिखाई जिस दिन से धर के छोड़ा ।
बेखौफ हो चुहों ने उनको कतर के छोड़ा ॥
पर हमने दम विनय का दम दममें भरके छोड़ा ॥११॥
मेले लगा कर हमने रौनक बढ़ाके छोड़ी ।
घोड़े व हाथियों की लैनें लगाके छोड़ी ॥
क्या क्या सुनाऊं शोभा जो जो दीखाके छोड़ी ।
अब नाम की गरज से दौलत लुटाके छोड़ी ॥
असली गरज को लेकिन जड़से मिटाके छोड़ा ॥ १२ ॥
हमने प्रभावना का सामान खोके छोड़ा ।
जिन धर्म का दिलों में श्रद्धान खोके छोड़ा ॥
अपने बड़ों का आदर सन्मान खोके छोड़ा ।
अपने भले बुरे का सब ज्ञान खोके छोड़ा ॥
ईमान की तो यह है ईमान खोके छोड़ा ॥ १३ ॥
भैरों को हमने सच्चे दिल से मनाके छोड़ा ।
काली पे काले बकरे का सर कटाके छोड़ा ॥
मुरगे ये शीतला के ऊपर चढ़ाके छोड़ा ।
कबरों पे हमने पीरों की सर नवाके छोड़ा
शिवजी का लिंग अपने दिल से जमाके छोड़ा ॥ १४ ॥
ए कौम के सपुत्रों ए मान वान वालों ।

कुछ तो शरम करो अब अर्जुन के बान वालों ॥
जो होगया सो बेहत्तर आगे को ही संभालो ।
कौमी बुराईयों को अब कौम से निकालो ॥
दो चार हाथ मारो पर कौम को बचालो ॥ १५ ॥
इसदम भला है मौका यह कौम को जिलादो ।
मोसम बहार का है कुछ तुम भी गुल खिलादो ॥
उल्टी को झट सुलट दो बिगड़ी को झट बनादो ।
भेरी को जैन मत की चारों तरफ बजादो ॥
कुछ काम करके अपना बल गैर को दिखादो ॥ १६ ॥
दस बीस ब्रह्मचर्य आश्रम बनाके रहना ।
दस बीस जैन कालिज कायम कराके रहना ॥
दस बीस अनाथालय फौरन खुलाके रहना ।
दस बीस पुस्तकालय दिल से बनाके रहना ॥
दस बीस औषधालय प्रासुक खुलाके रहना ॥ १७ ॥
कौमी बिरादरी को सीने लगाके रहना ।
कौमी बुराईयों को सचमुच भगाके रहना ॥
रंडी के नाच को जड़ जड़ से मिटाके रहना ।
शादी गमी के खर्चों को तुम घटाके रहना ॥
है जैन कौम मुरदा उसको जिलाके रहना ॥ १८ ॥
जिन धर्म का नकारा जग में बजाके रहना ।

गैरों को इस धर्म की अजमत दिखाके रहना ॥
हिंसा का नाम जग से बिल्कुल मिटाके रहना ।
दुनियाँ में जिन धर्म का सिक्का जमाके रहना ॥
यह धर्म है महारथ इसको चलाके रहना ॥ १९ ॥
द्रव्यों की सत्य चर्चा सबको सिखाके रहना ।
तत्वों का भेद असली सबको सुनाके रहना ॥
ईश्वर का रूप सच्चा सबको दिखाके रहना ।
सीधा जो मोक्ष मार्ग सबको बताके रहना ॥
मिथ्यात्व का अंधेरा जग से मिटाके रहना ॥ २० ॥
जिन धर्म शास्त्रों का परचार करके रहना ।
प्राचीन शास्त्रों का उद्धार करके रहना ॥
घर घर में शास्त्रों का भंडार करके रहना ।
चारों वरण से हर दम तुम प्यार करके रहना ॥
दुनियाँ में हर किसी का उपकार करते रहना ॥ २१ ॥
अब काम कीजियेगा दिल से विचार करके ।
मैदां में आइयेगा आलस उतार करके ॥
कुछ दान दीजियेगा अपनों का प्यार करके ।
धन चीज क्या है दे दो जाँ तक निसार करके ॥
माँगे भीख जाति पल्ला पसार करके ॥ २२ ॥

१३ स्वदेश भक्ति ।

स्वदेशी नाम हो अपना, स्वदेशी काम अपना हो ।
स्वदेशी बात हो अपनी, स्वदेशी गीत अपना हो ॥१॥
स्वदेशी बहन की चुंदरी, स्वदेशी मातृ का दामन ।
स्वदेशी भाई की पगड़ी, स्वदेशी अंग अपना हो ॥२॥
स्वदेश गृहिणी की साड़ी, स्वदेशी पुत्र की टोपी ।
स्वदेशी दोस्त की धोती, स्वदेशी कुरता अपना हो ॥३॥
स्वदेशी खाने हम खयंगे, स्वदेशी कपड़े सब पहिने ।
स्वदेशी जिंदगी अपनी, स्वदेशी कफन अपना हो ॥४॥
स्वदेशी उन्नति करना, धर्म अविरुद्ध चल करके ।
रहे उद्देश्य जीवन का, स्वदेशी राज्य अपना हो ॥५॥
न गोरों से जलन हम को, न कालों से हमें प्रीति ।
फकत पर इच्छा है अपनी, नहीं अपमान अपना हो ॥ ६ ॥
बराबर गोरे अरु काले, बैठे सब एक आसन पर ।
कहें सब प्रसन्न हो हो कर, करो स्वीकृत जो अपना हो ॥७॥
यही है भावना मेरी, यही अरदास मेरी है ।
एसी हो कामना मङ्गल, यही मन भाव अपना हो ॥८॥

॥ इति ॥

॥ ओ३म् ॥

जैनियों का अत्याचार

और

उसका फल।

जो जैनी वनस्पतिकाय के जीवों की भी रक्षा करते हैं, उनके ऊपर अत्याचार के दोष का आरोपण होते देख बहुत से पाठक चौंकेंगे परन्तु नहीं नहीं, चौंकने की जरूरत नहीं है। वास्तव में जैनियों ने घोर अत्याचार किया है और वे अब भी कर रहे हैं। हमारे भाइयों ने अभी तक इस ओर लक्ष्य नहीं किया और न कभी एकान्त में बैठ कर इस पर विचार ही किया। यदि जैनियों के अत्याचार की मात्रा बढ़ी हुई न होती तो आज जैनियों का इतना पतन कदापि न होता। जैनियों की यह दुर्दशा कभी न होती। जैनियों का समस्त अभ्युदय नष्ट होजाना इनके ज्ञानविज्ञान का नाम शेष रहजाना, अपने बल पराक्रम से जैनियों का हाथ धो बैठना, अपना राज्य गँवा देना, धर्म से च्युत और आचार भ्रष्ट होजाना तथा जैनियों की संख्या का दिन पर दिन कम होते जाना और जैनियों का सर्व प्रकार से नगण्य और निस्तेज होरहना, यह सब अवश्य ही कुछ अर्थ रखता है—इन सबका कोई प्रधान कारण जरूर है और वह जैनियों का अत्याचार है

जिस समय हम जैन सिद्धान्त को देखते हैं, जैनियों की कर्म फिलासोफी का अध्ययन करते हैं और साथ ही, जैनियों की यह पतितावस्था क्यों ? लौकिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार की उन्नतिसे जैनी इतने पीछे क्यों ? इस विषय पर अनुसन्धानपूर्वक गंभीर भाव से विचार करते हैं तो उस समय हम को मालूम होता है और कहना पड़ता है कि यह सब जैनियों के अपने ही कर्मों का फल है। जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है। अवश्य ही जैनियों ने कुछ ऐसे काम किये हैं जिन का कटुक फल वे अब तक भुगत रहे हैं। यह कभी हो नहीं सकता कि **अत्याचार तो करें दूसरे लोग और फल उस का भोगना पड़े जैनियों को**। जैन फिलासोफी इसको मानने के लिये तैयार नहीं। यदि थोड़ी देर के लिये उस मनुष्य को भी जिस पर अत्याचार किया गया हो, कोई बुरा फल सहन करता हो अथवा किसी आपत्ति का निशाना बनना पड़े तो कहना होगा कि उसने भी जरूर अपनी चेष्टा या अपने मनवचनादिक के द्वारा दूसरों के प्रति कोई अत्याचार विशेष किया है और वह बुरा फल उस केही किसी कर्म विशेष का नतीज़ा है। यही हालत जैन समाज की है यद्यपि इस में कोई सन्देह नहीं कि पिछले समय में जैनियों पर थोड़े बहुत अत्याचार जरूर हुए हैं, परन्तु वे अत्याचार जैनियों की वर्तमान दशा के कारण नहीं हो सकते। जैनियों की वर्तमान अवस्था कदापि उन का फल नहीं है। यदि जैनियों ने उन अत्याचारों को मनुष्य बनकर सह लिया होता और स्वयं उनसे अधिक

अत्याचार न किया होता तो जरूर था कि यह जैनबाग (जैनसमाज) दूसरों के अत्याचाररूपी खाद (manure) से और भी हराभरा और सरसब्ज होता-खूब फलता और फूलता; परन्तु जैनियों को ऐसी सद्बुद्धि ही उत्पन्न नहीं हुई। उन के विचार इतने संकीर्ण और स्वार्थमय रहे हैं कि सदसद्विवेकवती बुद्धि को उन के पास फटकने में भी लज्जा आती थी। अत्याचार और भी अनेक धर्मानुयायियों को सहन करने पड़े हैं परन्तु उन में से जिन्होंने अपने कर्तव्य पथ को नहीं छोड़ा, अपने सामाजिक सुधारको समझा, उन्नति के मार्ग को पहचाना, अपनी त्रुटियों को दूर किया, सब को प्रेम की दृष्टि से देखा और अपने स्वार्थ को गौणकर दूसरों का हित साधन किया, वे दुखके दिन व्यतीत करके आज अपने सत्कर्मोंका सुमधुर फल भोग रहे हैं। इससे साफ प्रगट है कि जैनियों की वर्तमानदशा उन अत्याचारों का फल नहीं है जो जैनियों पर हुए, बल्कि उन अत्याचारोंका फल है जो जैनियोंने दूसरों पर किये और जो परस्पर जैनियोंने एक दूसरे पर किये। सच है, **मनुष्योंका अपने ही कर्मों से पतन और अपने ही कर्मों से उत्थान होता है**। जिन जैनियोंके ज्ञान और आचरणकी किसी समय, चारों ओर धाक थी, जिनके सर्व प्राणिप्रेमने अनेक बार जगतको हिला दिया और जिनका राज्य समुद्रपर्यंत फैला हुआ था, आज वे ही जैनी बिलकुल ही रंक बने हुए हैं। यह सब जैनियों के अपनेही कर्मोंका फल है। इसके लिये किसी को दोष देना--किसी पर इलजाम लगाना भूल है। जैनियोंकी वर्तमान स्थिति हम [illegible]

बतला रही है कि उन्होंने जरूर कोई भारी अत्याचार किए हैं तभी उनकी ऐसी शोचनीय दशा हुई है।

जैनियोंने एक बड़ा भारी अपराध यह किया है कि इन्होंने दूसरे लोगोंको धर्मसे वंचित रक्खा है। ये खुद ही धर्म रत्न के भंडारी और खुद ही उसके सोल प्रोप्राइटर (अकेले ही मालिक) बन बैठे। दूसरे लोगोंको--दूसरे देशनिवासियों को--धर्म बतलाना धर्मके मार्गपर लगाना तो दूर रहा, इन्होंने उलटा उन लोगोंसे धर्मको छिपाया है। इनकी अनुदार दृष्टिमें दूसरे लोग बड़ी ही घृणाके पात्र रहे हैं, वे मनुष्य होते हुए भी मनुष्यधर्मके अधिकारी नहीं समझे गए। यद्यपि जैनी अपने मंदिरोंमें यह तो बराबर घोषणा करते रहे कि मिथ्यात्वके समान इस जीवका कोई शत्रु नहीं है, मिथ्यात्व ही संसारमें परिभ्रमण कराने वाला और समस्त दुःखोंका मूलकारण है। परन्तु मिथ्यात्वमें फंसे हुए प्राणियों पर इन्हें जरा भी दया नहीं आई उनकी हालतपर इन्होंने जरा भी तरस नहीं खाया और न मिथ्यात्व छुड़ानेका कोई यत्न ही किया। इनका चित्त इतना कठोर हो गया कि दूसरों के दुःख सुखसे इन्होंने कुछ सम्बन्ध ही नहीं रक्खा। जिस प्रकार कोई दुरात्मा पुत्र अपने स्वार्थ में अंधा होकर यह चाहता है कि मैं अकेला ही पैतृक सम्पत्तिका मालिक बन बैठूं और अपनी इस कामनाको पूरी करने के लिए वह अपने पिता के समस्त धनपर अधिकार कर लेता है—यदि पिताके कोई वसीयत भी की हो तो उसको छिपानेकी चेष्टा करता [illegible] नाबा-

लिग (अण्डुरत्न) हैं, जो भोले या मूर्ख हैं, जिनको अन्य प्रकारसे पिता के धनकी कुछ खबर नहीं है अथवा जो निर्बल उन सबको अनेक उपायों द्वारा पैतृक सम्पत्तिसे वंचित कर देता है। उसे इस बात का जरा भी दुख दर्द नहीं होता कि मेरे भाइयोंकी क्या हालत होगी ! उनके दिन कैसे कटेंगे ! और न कभी इस बात का खयाल ही आता है कि मैं अपने भाइयों पर कितना अन्याय और अत्याचार कर रहा हूं, मेरा व्यवहार कितना अनुचित है, मैं अपने पिताकी आत्माके सन्मुख क्या मुंह दिखाऊंगा । उसके विवेकनेत्र बिलकुल स्वार्थसे बन्द हो जाते हैं और उसका हृदययंत्र संकुचित होकर अपना कार्य करना छोड़ देता है। ठीक उसी प्रकारकी घटना जैनियोंकी हुई। ये अकेले ही परमपिता **श्री जिनेन्द्र** की सम्पति के अधिकारी बन बैठे "**समस्त जीव परस्पर समान हैं, जैनधर्म आत्माका निजधर्म है, प्राणीमात्र इस धर्मका अधिकारी है; सबको जैनधर्म बतलाना चाहिए और सबको प्रेम की दृष्टि से देखते हुए उनके उत्थानका यत्न करना चाहिये।**" वीर जिनेन्द्रकी इस **वसीयत को**–उनके इस पवित्र आदेशको–इन स्वार्थी पुत्रों ने छिपानेकी पूर्णरूप से चेष्टा की है। इन्होंने अनेक उपाय करके अपने दूसरे भाइयों को धर्मसे कोरा रक्खा, उनकी हालत पर जरा भी रहम नहीं खाया और न कभी अपने इस अन्याय, अत्याचार और अनुचित व्यवहार पर विचार या पश्चात्ताप ही किया। बल्कि जैनियों का यह अत्याचार बहुत कुछ अंशों में उस स्वार्थान्ध पुत्र के अत्याचार से भी बढा रहा।

क्योंकि किसी अधिकारी को धनादिक से वंचित रखना, यद्यपि अत्याचार जरूर है परन्तु जान बूझकर किसी को **आत्म लाभ से** वंचित रखना, यह उससे कहीं बढ़कर अत्याचार है। मेरा तो इस विषय में यहां तक ख्याल है कि यह अत्याचार किसी को जान से मार डालने की अपेक्षा भी अधिक है। धनादिक पदार्थों का वियोग इतना दुःख जनक नहीं होसकता जितना कि **आत्मलाभ से** वंचित रहना। जो लोग अपनी आत्मा को जानते हैं, अपने स्वरूप को पहचानते हैं, धर्म क्या और अधर्म क्या, इसका जिन्हें बोध है, उनको धनादिक का वियोग भी इतना कष्टकर नहीं होता जितना कि न जानने और न पहचानने वालों को होता है। इसलिए दूसरों को धर्म से वंचित रखना उनके लिए घोर दुःखों की सामग्री तैयार करना है। क्या इस अत्याचार का भी कहीं ठिकाना है? शोक! क्या ऐसा महान् अत्याचार करने वाले जैनियों का पाषाण हृदय, दूसरों के दुःखों का स्मरण ही नहीं किन्तु प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी जरा नहीं पसीजा आत्मलाभ से वंचित पापी और मिथ्यादृष्टि मनुष्य जैनियों के सन्मुख ही अनेक प्रकार के अनर्थ और पापाचरण करके अपनी आत्माओं का पतन करते रहे; परन्तु जैनियों को उन पर कुछ भी दया नहीं आई और न दूसरे जीवों की रक्षा का ही कुछ ख्याल उत्पन्न हुआ।

संसार में ऐसा व्यवहार है कि यदि कोई अन्धा मनुष्य कहीं चला जा रहा हो और उसके आगे कुआ आजाय तो देखने वाले उस [अन्धे] को तरन्त ही सावधान करदेंगे और अपनी समस्त शक्ति

को, उसे कुए में गिरने से बचाने अथवा गिरजाने पर उसको शीघ्र निकालने में लगादेंगे। यदि कोई मनुष्य अन्धे के आगे कुआ देखकर भी चुपचाप बैठा रहे और उसकी रक्षा का कुछ भी उपाय न करे तो वह बहुत पापी और निंद्य समझा जाता है। किसी कवि ने कहा भी है कि:-

" अब तू देखे आंख से, अंधे आगे कूप।
तब तेरा चुप बैठना, है निश्चय अघरूप॥ "

इसी प्रकार यदि कोइ मनुष्य किसी को दिनदहाड़े लूटता हो और दूसरा आदमी उसके इस कृत्य को देखता हुआ भी आनन्द से हुक्का गुड़गुड़ाता रहे और उसके बचाने की कुछ भी कोशिश न करे तो कहना होगा कि वह महा अपराधी है। जैनी लोग इस बात को बराबर स्वीकार करते आये हैं कि मिथ्यादृष्टि लोग अंधे होते हैं—उन्हें हित अहित कुछ भी सूझ नहीं पड़ता, परन्तु जैनियों के सन्मुख ही लाखों और करोड़ों मिथ्यादृष्टि अन्याय, अभक्ष्य और अतत्त्व श्रद्धा-रूपी कुए में बराबर गिरते रहे तो भी इन **सुदृष्टियों को** उनपर जरा भी दया नहीं आई। इन्होंने अपने मौनव्रत को भंगकर उनके बचाने या निकालने की कुछ भी चेष्टा नहीं की। और तो क्या, इनके सामने ही बहुत से इनके भाइयों (जैनियों) का धनधर्म लूटलिया गया और वे मिथ्यादृष्टि बना दिये गये, परन्तु फिर भी इनके कठोर चित्त पर कुछ आघात नहीं पहुँचा। ये बराबर अपने आनन्द में मस्त रहे। कोई जीयो या मरो, इन्होंने उसकी कुछ परवा नहीं की। बल्कि ये लोग उलटा खुश हुए और इन्होंने [illegible] अपने [illegible] भाइयोंको [illegible]

रोंके सपुर्द किया। यदि किसी भाईसे कोई अपराध या खोटा आचरण बन गया तो इन्होंने उसको अपनेमेंसे ऐसे निकाल कर फेंक दिया जैसा कि दूधमेंसे मक्खीको निकालकर फेंक देते हैं। इन्होंने उसको कुछ भी धीर दिलासा नहीं दिया, न इन्होंने उसके खोटे आचरणको छुड़ाकर धर्ममें स्थिर करनेकी कोशिश की और न प्रायश्चित आदि से शुद्ध करनेका कोई यत्न किया। बल्कि उसके साथ बिलकुल शत्रुओं सरीखा व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया। नतीजा इसका यह हुआ कि उसको अपनी संसारयात्राका निर्वाह करने के लिए दूसरोंका शरण लेना पड़ा और वह हमेशाके लिए जैनियोंसे बिछड़ गया। इससे समझ लीजिए कि जैनियों ने कितना बड़ा अपराध और अत्याचार किया है-कहां तक इन्होंने अपने धर्मका उल्लंघन और वहांतक उसके विरुद्ध आचरण किया है।

मनुष्यका यह धर्म नहीं है कि यदि कोई मनुष्य किसी नदी आदि में गिरता हो या बहता जाता हो तो उसको उलटा धक्का दे दिया जावे और यदि वह किनारेके पास भी हो और निकलना भी चाहता हो तो उसको ठोकर मारकर और दूर फेंक दिया जावे, जिससे वह निकलनेके काबिल भी न रहे। बल्कि इसके विपरीत उसको न गिरने देना या हस्तावलम्बन देकर निकालना ही मनुष्यधर्म कहलाता है। इसी लिए जैनियोंके यहां **'स्थितिकरण'** धर्म अंग रक्खा गया है। स्वामी **समन्तभद्राचार्यने** 'रत्नकरंडश्रावकाचार' में इसका स्वरूप इस प्रकार

" दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थानं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥"

अर्थात्—जो लोग किसी कारणवश अपने यथार्थ श्रद्धान या यथार्थ आचारणसे डिगते हों-धर्ममें प्रेम रखनेवाले पुरुषों को चाहिये कि उनको फिरसे अपने श्रद्धान और आचरण में दृढ़ करदें । यही 'स्थितिकरण' अंग कहलाता है।

परन्तु शोक ! जैनियोंने यह सब कुछ भुला दिया । गिरतेको सहारा या हस्तावलम्बन देना दूर रहा इन्होंने उलटा उसको और ज़ोर का धक्का दिया। श्रद्धान और आचरणसे डिगना तो दूसरी बात, यदि किसीने रूढ़ियों (जैनियोंके सम्यक्चारित्र !) के विरुद्ध ज़रा भी आचरण किया अथवा उनके विरुद्ध अपना खयाल भी ज़ाहिर किया तो बस उस बेचारेकी शामत आगई और वह झट जैनसमाजसे अपना अलग जीवन व्यतीत करनेके लिए मजबूर किया गया। जैनियोंके इस अत्याचारसे हजारों जैनी गाटे दस्से या विनैकया बन गये, लाखों अन्यमती होगये जैनियोंके देखते देखते मुसलमानी जमानेमें लाखों ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जबरन मुसलमान बना लिए गए, परन्तु जैनियों के संगदिलपर इससे कुछ भी चोट नहीं लगी । इन्होंने आजतक भी उन सबोंके शुद्ध करनेका--अपने बिछड़े हुए भाइयोंको फिरसे गलेलगाने का कोई उपाय न किया । ऐसा कोई अपराध नहीं जिसका प्रायश्चित्त न होसके। भगवज्जिनसेनाचार्य के निम्नलिखित वाक्य से भी प्रगट है कि [illegible] के कुल में किसी भी कारण से कभी कोई न

लगा हो तो वह राजा या पंच आदि की सम्मति से अपनी कुल शुद्धि कर सकता है। और यदि उसके पूर्वज-जिन्होंने दोष लगाया हो दीक्षायोग्य कुल में उत्पन्नहुए हों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यवर्ण के रहे हों तो उस कुलशुद्धि करने वाले और उस के पुत्रपौत्रादिक सन्तानका यज्ञोपवीत संस्कार भी हो सकता है। वह वाक्य इस प्रकार है:—

कुतश्चित्कारणाद्यस्य कुलं सम्प्राप्तदूषणम्।
सोपि राजादिसम्मत्या शोधयेत्स्वं यदा कुलम्॥
तदस्यापनयार्हत्वं पुत्रपौत्रादिसंततौ।
न निषिद्धं हि दीक्षार्हे कुले चेदस्य पूर्वजाः॥

आदि पुराण पर्व ४०।

इस से दस्सों और हिन्दू से मुसलमान बने हुए मनुष्योंकी शुद्धि का खासा अधिकार पाया जाता है बल्कि शास्त्रों में उन म्लेच्छों की भी शुद्धि का विधान पाया जाता है जो मूल से ही अशुद्ध है। आदि पुराण में यह उपदेश स्पष्ट शब्दों में दिया गया है कि, 'प्रजा को बाधा पहुंचाने वाले अनक्षर [अनपढ़] कुल शुद्धि आदि के द्वारा अपने बना लेने चाहिये। * परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी जैनियों के संकीर्ण हृदय ने महात्माओं के इन उदार और दयामय उपदेशों को

---

* " स्वदेशेऽनक्षरम्लेच्छान्प्रजाबाधाविधायिनः।
कुलशुद्धिप्रदानाद्यैः स्वसात्कुर्यादुपक्रमैः॥ १७॥ "

आदि पुराण पर्व ४२।

ग्रहण नहीं किया। सच भी है, सेर भर के पात्र में मन भर कैसे समा सकता है! अपात्र जैनियों के हाथ में जैन धर्म्म पड़ जाने से ही उन्होंने जैन धर्म का गौरव नहीं समझा और इस लिये दूसरों पर मन माना अत्याचार किया है।

हम कहते हैं कि दूसरों को धर्म बतलाने या सिखलाने में धार्मिक भाव और परोपकार बुद्धि को जाने दीजिये, जैनियों ने यह भी नहीं समझा कि **परस्थिति** कितने महत्त्व की चीज है। क्या परस्थिति कभी उपेक्षणीय हो सकती है? कदापि नहीं। जहां चारों ओर का जलवायु दूषित हो वहां कदापि आरोग्यता नहीं रह सकती। जहां चारों ओर मिथ्यादृष्टियों और पापाचारियों का प्राबल्य हो वहां जैन भी अपना सम्यक्त्व और धर्म क़ायम नहीं रख सकते। यदि जैनियों ने इस परस्थिति के महत्त्व को ही समझ लिया होता तब भी वे आत्म-रक्षा के लिये ही दूसरों की स्थिति का सुधार करना अपना कर्तव्य समझते, अवश्य ही दूसरों को धर्म की शिक्षा देने का प्रयत्न करते और कदापि धर्म प्रचार के कार्य से उपेक्षित न होते; परन्तु महर्षियों द्वारा संरक्षित **वीरजिनेन्द्र** की सम्पत्तिको पाकर जैनी ऐसे कृपण बने इनमें चित्त को कठोर करने वाली ऐसी धार्मिक कृपणता आई कि दूसरों को उस सम्पत्ति से लाभ पहुंचाना तो दूर रहा, ये खुद भी उस से कुछ लाभ न उठा सके। यदि इस **परमोत्कृष्ट** जैन धर्म को पाकर जैनी अपना ही कुछ भला करते तो भी एक बात थी, परन्तु कृपण का धन जिस प्रकार दान और भोग में न लग कर तीसरी गति (नाश

को प्राप्त होजाता है, उसी प्रकार जैनियों ने जैन धर्म भी तृतीया गति को पहुंचा दिया--न आप इससे कुछ लाभ उठाया और न दूसरों को उठाने दिया, वैसे ही इस को नष्ट भ्रष्ट और लुप्तप्राय कर दिया--और जिस प्रकार बादल सूर्य के प्रकाश को रोक लेते हैं उसी प्रकार इन धार्मिक-कृपणों ने जैन धर्म के प्रकाशको आच्छादित कर दिया।

जैनियों ने **जिनवाणी माता** के साथ जैसा सलूक किया है उसको याद करके हृदय कांपता है और शरीरके रोंगटे खड़े होते हैं। इन्होंने **माता** को उन अंधेरी कोठरियों में बन्द करके रक्खा, जहां रोशनी और हवा का गुजर नहीं, उसका अंग चूहोंसे कुतरवाया और दीमकोंको खिलाया, माता गलती है या सड़ती, जीती है या मरती, इसकी इन्होंने कुछ भी परवाह नहीं की। हजारों जैनग्रंथों की मिट्टी हो गई, हजारों शास्त्र चूहों और दीमकोंके पेटमें चले गए, लाखों और करोड़ों मनुष्य मातृवियोग दुःखमें पीड़ित रहे; परन्तु इन समस्त दृश्यों से जैनियों के वज्रहृदयपर कुछ भी चोट नहीं लगी। मातापर इस प्रकारके अत्याचार करते हुए जैनियोंका हृदय जरा भी कम्पायमान नहीं हुआ और इन्हें कुछ भी लज्जा (या शर्म) नहीं आई इन्होंने उलटी यहांतक निर्लज्जता धारण की कि अपने इन अत्याचारोंका नाम '**विनय**' रखछोड़ा। वास्तवमें इनका नाम विनय नहीं है, ये घोर अत्याचार हैं। और न दाई हाथ दूर से जोड़ने या चावलके दाने चढ़ा देनेका नाम ही विनय है। जिनवाणी का विनय है—**जैन शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना उनके मुताबिक चलना और उनका सर्वत्र प्रचार**

करना। इस वास्तविक विनयसे जैनी कोसों दूर रहे और इसलिए इन्होंने माताका घोर अविनय ही नहीं किया, बल्कि जैन शास्त्रों का लोप भी किया है।

इसी प्रकार जैनियोंने **स्त्रीसमाजपर**, जो अत्याचार किया है वह भी कुछ कम नहीं है। इन्होंने लड़कियोंको बेचा, धनके लालचसे अपनी सुकुमार बालिकाओंको यमके यजमानोंके गले बांध उन्हें हमेशाके लिये पापमय जीवन व्यतीत करनेको मजबूर किया, अनमेल सम्बन्ध करके स्त्रियोंका जीवन दुःखमय बनाया और उन्हें अनेक प्रकारका दुःख और कष्ट पहुंचाया पर इन सब अत्याचारोंको रहने दीजिये। जैनियोंने इन सब अत्याचारोंसे बढ़कर स्त्रीसमाज पर जो भारी अत्याचार किया है उसका नाम है **स्त्रीसमाजको अशिक्षित रखना**। स्त्रियों और बालिकाओंको विद्या न पढ़ाकर जैनियोंने उनके साथ बड़ी ही शत्रुता का व्यवहार किया है। जिस विद्या और ज्ञानके विना मनुष्य निद्रित, अचेत, पशु और मृतकके तुल्य वर्णन किये गये हैं और जिसके विना सुख शांतिकी प्राप्ति नहीं हो सकती, उसी विद्या और ज्ञान से जैनियों ने स्त्रियों को वंचित रक्खा, यह इनका कितना बड़ा अन्याय है! जैनियों ने स्त्रियों की योग्यता और उनकी विद्यासम्पादन शक्तिको न समझा हो, ऐसा नहीं, किन्तु **'लड़कियां पराए घरका धन और पराए घरकी चांदनी हैं, वे हमारे कुछ काम नहीं आ सकतीं'** इस स्वार्थमय वासनासे जैनियोंने उन्हें विद्या से [illegible]

संतानके प्रति ऐसा निर्दय बनाया और इतना विवेक हीन बनाया कि उन्होंने स्त्रीसमाज के साथ पशुओं सदृश व्यवहार किया, उन्हें जडवत् रक्खा, काष्ठपाषाणकी मूर्तियें समझा और उन्हें अपनी आत्मोन्नति करने देना तो दूर रहा, यह भी खबर न होने दी कि संसार में क्या हो रहा है। क्या यह थोड़ा अत्याचार है ! नहीं इस अत्याचार के करने में जैनी मनुष्यताका भी उलंघन कर गये। इनसे पशुपक्षीही अच्छे रहे जो अपनी नर और मादी दोनों प्रकारकी संतानको समान दृष्टिसे अवलोकन करते हैं और उससे किसी भी प्रकारके प्रत्युपकारकी वांछा न रखते हुए अपना कर्त्तव्य समझ कर सहर्ष उसका पालन पोषण करते हैं।

हमें यहां पर यह लिखते हुए दुःख होता है कि जैनियों का यह अत्याचार केवल स्त्री समाज को ही नहीं भोगना पड़ा, बल्कि पुरुषों, को भी इसका हिस्सेदार बनना पड़ा है--बालकों पर भी इसका बजला टपका है। माताओं के अशिक्षित रहने से--परिस्थिति के बिगड़ जाने से--वे भी शिक्षा से प्रायः विहीन ही रहे हैं। हज़ार में दश पांचने यदि मामूली विद्या पढ़ी भी--कुछ अक्षरों का अभ्यास किया भी--तो इसका नाम **शिक्षा** नहीं है। जैन बालकों को जैसी चाहिये वैसी विद्यायें नहीं पढ़ाई गई। यदि उन्हें बराबर विद्यायें पढ़ाई जातीं तो आज उन हज़ारों विद्याओं का लोप न होता, जिनका उल्लेख जैन शास्त्रों में मिलता है। दिव्य विमानों की रचना को जाने दीजिए, कोई जैनी ... ... यंत्र के बनाने की विधि भी नहीं जानता

जिसको जीवंधर के पिता सत्यधर ने बनाया था और उसमें अपनी गर्भवती स्त्री को बिठलाकर, गर्भस्थ पुत्र की रक्षा के लिए, उसे दूर देशान्तर में पहुंचाया था ! इसी प्रकार सैकड़ों विद्याओं का नामोल्लेख किया जासकता है । जैनियों ने शिक्षा और खासकर स्त्री शिक्षा से द्वेष रखकर इन समस्त विद्याओं के लोप करने का पाप अपने सिर लिया है और इसलिए जैनी समस्त जगत के अपराधी हैं ।

जैनियों का एक भारी अत्याचार और भी है और वह अपनी संतान की छोटी उम्र में शादी करान। है । इसके विषय में मुझे कुछ विशेष लिखने की ज़रूरत नहीं है । हां इतना ज़रूर कहूंगा कि इस राक्षसी कृत्य के द्वारा आज तक लाखों ही नहीं किन्तु करोड़ों दुधमुंही बालिकाएं विधवा हो चुकी हैं—वैधव्य की भयंकर आंच में भुन चुकी हैं । हजारों ने अपने शील शृंगार को उतार दिया व्यभिचार का आश्रय लिया, दोनों कुलों को कलंकित किया और भ्रण हत्यायें तक कर डालीं इसके सिवा बाल्यावस्था में स्त्री पुरुष का संसर्ग होजाने से जो शारीरिक और मानसिक निर्बलतायें इनकी संतान में उत्तरोत्तर प्राप्त हुईं उनका कुछ भी पारावार और हिसाब नहीं है निर्बल मनुष्य का जीवन बड़ा ही बवालेजान और संकटमय होता है । रोगों का उस पर आक्रमण होजाना तो एक मामूली सी बात है । जैनियों के इस अत्याचार से उनकी संतान बड़ी ही पीड़ित रही । उससे हिम्मत, साहस, धैर्य, पुरुषार्थ और वीरता आदि सद्गुणों की सृष्टि ही एक दम उठखड़ी हुई । जैनी निर्बल होकर खटमल मच्छड़ की तरह [illegible]

करते रहे और इन पापों ने उदय आकर जन्मजन्मान्तरों में इन्हें खूब ही नीचा दिखाया। जैनियों का यह गुड्डा गुड्डी का खेल (बाल्य विवाह) बड़ा ही हृदय द्रावक है। इसने जैन समाज की जड़ में बड़ा ही कुठाराघात किया है इस प्रकार जैनियों ने बहुत बड़े २ अत्याचार किये हैं। इनके सिवा और जो छोटे मोटे अत्याचार किये हैं उनकी कुछ गिनती ही नहीं है। जैनियों के इन अत्याचारों से जैन धर्म कितना कलंकित हुआ और जगत् में कैसे २ अनर्थ फैले, इसका कुछ ठिकाना नहीं है। जैनियों के इन अत्याचारों ही का फल उनकी वर्तमान दशा है। बल्कि नहीं, जैनियों में इस समय जो कुछ थोड़ी बहुत अच्छी बातें बची खुची हैं, उनका श्रेय **समन्तभद्र, अकलंकदेव** और **विद्यानन्द** आदि परमोपकारी आचार्यों तथा अन्य परोपकारी महानुभावों को प्राप्त है। ऐसे जगद्बन्धुओं के आश्रित रहने से ही जैनधर्म के अभीतक कुछ चिन्ह अवशेष पाये जाते हैं; अन्यथा जैनियोंके अत्याचार उनकी सत्ताको बिलकुल लोप करनेके लिए काफी थे। अबतक जैनियों ने अत्याचार करना प्रारम्भ नहीं किया था, तबतक इनका बराबर डंका बजाता रहा, ये खूब फलते और फूलते रहे परन्तु जबसे ये लोग अत्याचारों पर उतर आए तभीसे इनका पतन शुरू होगया। और आज वह दिन आगया कि ये लोग पूरी अधोदशाको पहुँच गये हैं। जैनियों के अत्याचार जैनियों को खूब ही फले-इन्होंने अपने किए की खूब सजा पाई -ये लोग दूसरों को धर्म बतलाना नहीं चाहते थे, अब खुद ही धर्मसे वंचित होगये, दूसरोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे, अब

खुद ही घृणाके पात्र बनगये, जिस बल विद्या और ऐश्वर्यपर इन्हें घमंड था वह सब नष्ट होगया, ये लोग अपने आपको भले ही जीवित समझते हों परन्तु जीवित समाजोंमें अब इनकी गणना नहीं है, इनकी गणना है मरणोन्मुख समाजोंमें जैनी लोग अन्धकारमें पड़े हुए सिसक रहे हैं--वास्तवमें इनकी हालत बड़ीही करुणाजनक है। जबतक जैनी लोग इन अत्याचारों को बंद करके अपने पूर्व पापोंका प्रायश्चित्त नहीं करेंगे तबतक वे कदापि इस दैवकोपसे विमुक्त नहीं हो सकते, उनका अभ्युत्थान नहीं हो सकता और न उनमें जीवनीशक्तिका फिरसे संचार होसकता है। आशा है कि हमारे जैनीभाई इस लेखको पढ़कर अपने अत्याचारों को परिभाषा समझेंगे और उनके भयंकर परिणामोंको विचार कर शीघ्र ही उनका प्रायश्चित करनेमें दत्तचित्त होंगे। प्रायश्चित्त विधि बतलानेके लिए मैं सहर्ष तैयार हूं।

जुगलकिशोर मुख्तार,

देवबन्द, जि० सहारनपुर।

"दिगंबर जैन" के इसी अंकका क्रोड़पत्र।

दिगंबरजैनग्रंथमाला नं० ४७

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

समाधिमरण

और

मृत्युमहोत्सव।

(पंडित सूरचन्दजी और सदासुखजी कृत)

प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया—सूरत।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४४२ [प्रति १२००

सोनासण (प्रांतिज) निवासी गांधी नहालचंद सांकलचंदके स्वर्गवासी पुत्र जुठाभाईके स्मरणार्थ 'दिगंबरजैन' के ग्राहकोंको नौवें वर्षका छठा उपहार.

"जैनविजय" प्रेस-सूरत.

मूल्य रु० ०—१—६

॥ श्रीजिनाय नमः ॥

समाधिमरण भाषा।

पं० सूरचन्दजी रचित।

नरेंद्र छन्द।

बन्दों श्रीअरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई॥
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उरमाँही।
अन्तसमयमें यह वर माँगू, सो दीजे जगराई॥ १॥
भव भवमें तन धार नये मैं, भव भव शुभ सँग पायो।
भव भवमें नृप ऋद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो॥
भव भवमें तन पुरुष तनो धर, नारी हू तन लीनो।
भव भवमें मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो॥ २॥
भव भवमें सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव भवमें गति नरकतनी धर, दुख पाये विधयोगे॥
भव भवमें तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अतिभारी।
भव भवमें साधर्मी जनको, संग मिलो हितकारी॥ ३॥
भव भवमें जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहि दीनो।
भव भवमें मैं समवशरणमें, देखो जिनगुण भीनो॥

एती वस्तु मिली भव भवमें, सम्यक गुण नहिं पायो ।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥ ४ ॥
काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहि कीनो
एक बारहू सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो ॥
जो निजपरको ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काँई ।
देहविनासी मैं निजभासी, जोतिस्वरूप सदाई ॥ ५ ॥

विषय कषायनके वश होकर, देह आपनो जानो ।
कर मिथ्यासरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछानो ॥
यों कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो ।
सम्यकदर्शन ज्ञान तीन ये, हिरदेमें नहिं लायो ॥ ६ ॥

अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरणसमय यह माँगों ।
रोगजनित पीड़ा मत होऊ, अरु कषाय मत जागो ॥
ये मुझ मरणसमय दुखदाता, इन हर साता कीजे ।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजे ॥ ७ ॥

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै ।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्ठा पावै ॥
अति दुर्गंध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै ।
देहविनासी यह अविनासी, नित्यस्वरूप कहावै ॥ ८ ॥
यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजे ।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजे ॥

मृत्यु होनेसे हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समतासे जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो॥ ९॥

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसरके माहीं।
जीरन तनसे देत नयो यह, या सम साहू नाहीं॥
या सेती इस मृत्युसमयपर, उत्सव अति ही कीजे।
क्लेशभावको त्याग सयाने, समताभाव धरीजे॥ १०॥

जो तुम पूरव पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्गसंपदा भाई॥
राग द्वेषको छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समयमें समता धारो, परभवपंथ सहाई॥ ११॥

कर्म महा दुठ बैरी मेरो, तासेती दुख पावे।
तन पिंजरेमें बंध कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावे॥
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तनमें गाढ़े।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजरेसे काढ़े॥ १२॥

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तनको पहराये।
गंधसुगन्धित अतर लगाये, षटरस असन कराये॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रहो निधि मेरी॥ १३॥

मृत्युरायको शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ॥

देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं ।
मृत्युसमयमें ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥ १४ ॥

यह सब मोह बढ़ावनहारे, जियको दुर्गतिदाता ।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती ।
समता धरकर मृत्यु करौ तौ, पावो संपति तेती ॥ १५ ॥

चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो ।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकतिमें जावो ॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारे ।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥ १६ ॥

इस तनमें क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरन हो है ।
तेज कांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥
पाँचों इंद्री शिथल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवे ।
तापर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नाहिं लावे ॥ १७ ॥

मृत्युराज उपकारी जियको, तनसे तोहि छुड़ावे ।
नातर या तन बंदीगृहमें, परयो परयो बिललावे ॥
पुद्गलके परमाणु मिलके, पिंडरूप तन भासी ।
यही मूरती में अमूरती, ज्ञानजोति गुणखासी ॥ १८ ॥

रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गललारे ।
मैं तो चेतन व्याधि विना नित, हैं सो भाव हमारे ॥

या तनसे इस क्षेत्र सँबंधी, कारण आन बनो है।
खान पान दे याको पोपो, अब समभाव ठनो है ॥ १९ ॥
मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जानो।
इन्द्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछानो ॥
तन विनशनतें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई।
कुटुम आदिको अपनो जानो, भूल अनादी छाई ॥ २० ॥
अब निज भेद यथारथ समझो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जानो याको रूपी ॥
इष्टनिष्ट जेते सुखदुख हैं, सो सब पुद्गलसागे।
मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुःख भागे ॥ २१ ॥
बिन समता तन नन्त धरे मैं, तिनमें ये दुःख पायो।
शस्त्रघाततें नन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो ॥
बार नन्त ही अग्निमाहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहि नन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो॥ २२ ॥
बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराजको भय नाहिं मानो, देवै तन सुखदाई ॥
यातें जबलग मृत्यु न आवै, तबलग जप तप कीजै।
जप तप बिन इस जगके माहीं, कोई भी ना सीजै ॥ २३ ॥
स्वर्ग संपदा तपसे पावै, तपसे कर्म नसावै।
तपहीसे शिवकामिनिपति है, यासों तप चित लावै ॥

अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई ।
मात पिता सुत बान्धव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥ २४ ॥

मृत्यु समयमें मोह करैं ये, तातैं आरत हो है।
आरततैं गति नीची पावै, यों लख मोह तजो है॥
और परिग्रह जेते जगमें, तिनसे प्रीति न कीजे ।
परभवमें ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे ॥ २५ ॥

जे जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसे नेह निवारो ।
परगतिमें ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो ॥
जो परभवमें संग चलें तुझ, तिनसे प्रीति सु कीजे ।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे ॥ २६ ॥

दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा चित लावो ।
षोडशकारण नित्य चिन्तवो, द्वादश भावन भावो ॥
चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रातको त्यागो ।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो ॥ २७ ॥

अन्तसमयमें ये शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई ।
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहिं अधिकाई ॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमें समता लाके ।
जासेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके ॥ २८ ॥

मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई ।
ये ही तोकों सुखकी दाता, और हितू कोऊ नाई ॥

आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी ।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥२९॥
तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाके ।
भावसहित अनुमोदै तामें, दुर्गति होय न जाके ॥
अरु समता निज उरमें आवै, भाव अधीरज जावै ।
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विच लावै ॥३०॥
धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी ।
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत, पाँव भख्यो दुखकारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ३१ ॥
धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो ।
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतमसों हित लायो ॥
यह उपसर्ग सहोधर थिरता, आराधन चित धारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ३२ ॥
देखो गज मुनिके सिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी ।
शीस जलै जिम लकड़ी तिनको, तो भी नाहिं चिगारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ३३ ॥
सनतकुमार मुनीके तनमें, कुष्ठ वेदना व्यापी ।
छिन्न भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्त्यो गुण आपी ॥

यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिये कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥ ३४॥
श्रेणिकसुत गंगामें डूबो, तब जिननाम चितारो।
धर सलेखना परिग्रह छाँड़ो, शुद्ध भाव उर धारो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥ ३५॥
समँतभद्र मुनिवरके तनमें, क्षुधा वेदना आई।
ता दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिन्तो निजगुण भाई॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥ ३६॥
ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबीतट जानो।
नदीमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी॥ ३७॥
धर्मघोष मुनि चंपानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो।
एक मासकी कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥ ३८॥
श्रीदत्तमुनिको पूर्व जन्मको, वैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुःख शीततनो सो, सहो साध मन लाके॥

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३९ ॥
…भेसन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरो मन लाई।
…पे घाम अरु उष्ण पवनकी, बेदन सहि अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ४० ॥
अभयघोष मुनि काकंदीपुर, महा बेदना पाई।
बैरी चँडने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ४१ ॥
विद्युतचरने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी।
शुभ भावनसे प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ४२ ॥
पुत्र चिलाती नामा मुनिको, बैरीने तन घातो।
मोटे मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ४३ ॥
दण्डक नामा मुनिकी देही, बाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥

यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४४ ॥
अभिनंदन मुनि आदि पाँचसे, घानी पेलि जु मारे ।
तौ भी श्रीमुनि समता धारी, पूरब कर्म बिचारे ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४५ ॥
चाणक मुनि गोघरके माहीं, मूँद अगिनिपर जालो ।
श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हालो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४६ ॥
सात शतक मुनिवर ने पायो, हथनापुरमें जानो ।
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४७ ॥
लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये ।
पाँचो पाण्डव मुनिके तनमें, तौ भी नाहिं चिगाये ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४८ ॥
और अनेक भये इस जगमें, समता रसके स्वादी ।
वे ही हमको हो सुखदाता, हर हैं टेव प्रमादी ॥

सम्यकदर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों ।
ये ही मोकों सुखकी दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥ ४९ ॥
समाधि उर माहीं लावो, अपनो हित जो चाहो ।
ममता अरु आठों मदको, जोतिस्वरूपी ध्यावो ॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतरके काजै ।
सो भी शुकन विचारे नीके, शुभ शुभ कारण साजै ॥ ५० ॥
मात पितादिक सर्व कुटुंब सो, नीके शुकन बनावें ।
हल्दी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावें ॥
एक ग्रामके कारण एते, करैं शुभाशुभ सारे ।
जब परगतिको करत पयानो, तब नहिं सोचें प्यारे ॥ ५१ ॥
सर्व कुटुंब जब रोवन लागै, तोहि रुलावैं सारे ।
ये अपशुकन करैं सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारे ॥
अब परगतिको चालत विरियां, धर्मध्यान उर आनो ।
चारों आराधन आराधो, मोहतनो दुख हानो ॥ ५२ ॥
ह्वै निशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो ।
जब परगतिको करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो ॥
मोह जालको काट पियारे, अपनो रूप विचारो ।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥ ५३ ॥

दोहा ।

मृत्युमहोत्सव पाठको, पढ़ो सुनो बुधिवान ।
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द शिवथान ॥ ५४ ॥
पंच उभय नव एक नभ, सम्वत सो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कहो पाठ मन लाय ॥ ५५ ॥

समाधिमरणभाषा ।

जोगीरासा वा नरेन्द्रछन्द ।

गौतम स्वामी वन्दों नामो, मरणसमाधि भला ॥ मैं कब पाऊँ निशदिन ध्याऊँ, गाऊँ वचन कला ॥ देव धरम गुरु प्रीति महा दृढ़, सात व्यसन नहिं जाने । तजि बाईस अभक्ष संयमी, बारह व्रत नित ठाने ॥ १ ॥ चक्की उखरी चूलि बुहारी, पानी त्रस न विराधै । बनिज करे पर द्रव्य हरे नहिं, छहों करम इमि साधै ॥ पूजा शास्त्र गुरुनकी सेवा, संयम तप चउदानी । पर उपकारी अल्प अहारी, सामायिकविधि ज्ञानी ॥ २ ॥ जाप जपै तिहुं योग धरै दृढ़, तनकी ममता टारै । अन्तसमय वैराग्य सम्हारे, ध्यान समाधि विचारै ॥ आग लगै अरु नाव डूबै जब, धर्म विघन जब आवै । चार प्रकार आहार त्यागिके, मंत्र सु मनमें ध्यावै ॥ ३ ॥ रोग असाध्य जहाँ बहु देखै, कारण और निहारै । बात बड़ी है जो बनि आवै, भार भवनको टारै ॥ जो न बने तो घरमें रह करि, सबसों होय निराला । मात पिता सुत तियकों सौंपै, निज परिग्रह अहि काला ॥ ४ ॥ कछु चैत्यालय कछु श्रावक जन, कछु दुखिया धन देई । क्षमा क्षमा सबहीसों कहिके, मनकी शल्य हनेई ॥ शत्रुनसों मिलि निज कर जोरै, मैं बहु करी है बुराई । तुमसे प्रीतमको

दुख दीने, ते सब बकसो भाई ॥ ५ ॥ धन धरती जो कोई मांगे, सो सबही संतोषै । छहों कायके प्राणी ऊपर, करुणाभाव विशेषै ॥ ऊँच नीच घर बैठ जगह इक, कछु भोजन कछु पैलै । दूधाहारी क्रम क्रम तजिकै, छांछ अहार पहेलै ॥ ६ ॥ छांछ त्यागिके पानी राखै, पानी तजि संथारा । भूमिमाहिं थिर आसन माँड़ै, साधर्मी ढिंग प्यारा ॥ जब तुम जानो यह न जपै है, तब जिनबानी पढ़िये । यों कहि मौन लियौ संन्यासी, पंच परम पद गहिये ॥७ ॥ चौ आराधन मनमें ध्यावै, बारह भावन भावै । दशलक्षण मन धर्म विचारै, रत्नत्रय मन ल्यावै ॥ पैंतीस सोलह षट पन चौ दुइ, एक बरन विचारै । काया तेरी दुखकी ढेरी, ज्ञानमई तू सारै ॥ ८ ॥ अजर अमर निज गुणसों पूरै, परमानन्द सुभावै । आनँद कन्द चिदानँद साहब, तीन जगतपति ध्यावै ॥ क्षुधा तृषादिक होइ परीषह, सहै भाव सम राखै । अतीचार पाँचों सब त्यागै ज्ञान सुधारस चाखै ॥ ९ ॥ हाड़ मांस सब सूखी जाय जब, धरम लीन तन त्यागै, । अद्भुत पुण्य उपाय सुरगमे, सेज उठै ज्यों जागै ॥ तहँतै आवै शिव पद पावै, बिलसै सुक्ख अनन्तो । 'द्यानत' यह गति होय हमारी, जैन धरम जयवन्तो ॥ १० ॥

मृत्युमहोत्सव ।

स्वर्गीय पं. सदासुखजीकृत वचनिका सहित

मृत्युमार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे ।
समाधिबोधौ पाथेयं यावन्मुक्तिपुरी पुरः ॥ १ ॥

अर्थ—मृत्युके मार्गमें प्रवर्त्या जो मैं ताकूं भगवान वीतराग जो है सो समाधि कहिये स्वरूपकी सावधानी अर बोध कहिये पर लोकके मार्गमें उपकारक वस्तु सो देहु जितनेक मैं मुक्ति पुरी प्रति जाय पहुंचूं या प्रार्थना करूं हूं। **भावार्थ**—मैं अनादिकालतें अनंत कुमरण किये जिनकूं सर्वज्ञ वीतराग ही जानैं हैं। एकवार हू सम्यक् मरण नहिं किया। जो सम्यक्मरण करता तो फिर संसारमें मरणका पात्र नहिं होता जातें जहां देह मर जाय अर आत्माका सम्यग्दर्शन ज्ञानचरित्र स्वभाव है सो विषय कषायनिकरि नहीं घात्या जाय सो सम्यक्मरण है अर मिथ्याश्रद्धानरूप हुवा देहका नाशकूं ही अपना आत्माका नाश जानना। संक्लेशतें मरण करना सो कुमरण है सो मैं मिथ्यादर्शनका प्रभाव करि देहकूं ही आपा मानि अपना ज्ञानदर्शनस्वरूपका घात करि अनंत परिवर्तन किये सो अब भगवान् वीतरागसों ऐसी प्रार्थना करूं हूं जो मेरे मरणके समयमें वेदनामरण तथा आत्मज्ञानरहित मरण मत होहू क्योंकि सर्वज्ञ वीत-

रागका शरणसहित संक्लेशरहित धर्मध्यानतैं मरण चाहता वीतरागहीका शरणा ग्रहण करूं हूं ॥ १ ॥

अब मैं अपनें आत्माकूं समझाऊं हूं,—

कृमिजालशताकीर्णे जर्जरे देहपञ्जरे ।
भज्यमाने न भेतव्यं यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः ॥ २ ॥

अर्थ—भो आत्मन ! कृमिनिके सैकडां जालनिकरि भरया अर निश्चय जर्जरा होना यो देहरूप पींजरा इसकूं नष्ट होतैं तुम भय मत करो जातैं तुम तो ज्ञानशरीर हो । **भावार्थ**- तुमारा रूप तो ज्ञान है जिसमें ये सकल पदार्थ उद्योतरूप हो रहे हैं अर अमूर्तिक ज्ञान ज्योतिःस्वरूप अखंड अविनाशी ज्ञाता दृष्टा है अर यह हाड मांस चामडामय महादुर्गंध विनाशीक देह है सो तुमारा रूपतैं अत्यंत भिन्न है । कर्मके वशतैं एक क्षेत्रमें अवगाहन करि एकसे होय तिष्ठे है तो-हू तुमारे इनके अत्यंत भेद है अर यो देह पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणुनिका पिंड है सो अवसर पाय विखर जायगा तुम अविनाशी अखंड ज्ञायकरूप होय इसके नाश होनेतैं भय कैसे करो हो ॥ २ ॥ अब और हू कहै है—

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्युमहोत्सवे ।
स्वरूपस्थः पुरं याति देही देहान्तरस्थितिः ॥ ३ ॥

अर्थ—भो ज्ञानिन् ! कहिये हो ज्ञानी तुमको वीतरागी सम्य-

ज्ञानी उपदेश करैं हैं जो मृत्युरूप महान् उत्सवको प्राप्त होतैं काहेतैं भय करो हो ? यो देही कहिये आत्मा सो अपने स्वरूपमैं तिष्ठता अन्य देहमें स्थितिरूप पुरकूं जाय है यामैं भयका हेतु क है ? भावार्थ—जैसे कोऊ एक जीर्णकुटीमैंतैं निकसि अन्य नवीन महलकूं प्राप्त होय सो तो बड़ा उत्सवका अवसर है तैसें यो आत्मा अपने स्वरूपमैं तिष्ठता ही इस जीर्ण देहरूप कुटीकूं छांड़ि नवीन देहरूप महलकौं प्राप्त होतैं महा उत्सवका अवसर है यामैं कुछ हानि नहीं जो भय करिये अर जो अपने ज्ञायकस्वभावमैं तिष्ठते परका अपणासकरि रहित परलोक जावोगे तो बड़ा आदरसहित दिव्य धातु उपधातुरहित वैक्रियकदेहमैं देव होय अनेक महर्द्धिकनिमैं पूज्य महान देव होवोगे अर जो यहां भयादिक करि अपना ज्ञानस्वभावकूं बिगाड़ि परमैं ममता धारि मरोगे तो एकेन्द्रियादिकका देहमैं अपने ज्ञानका नाश करि जड़रूप होय तिष्ठोगे, ऐसैं मलीन क्लेशसहित देहकूं त्यागि क्लेशरहित उज्वल देहमैं जाना तो बड़ा उत्सवका कारण है ॥ ३ ॥

सुदत्तं प्राप्यते यस्माद् दृश्यते पूर्वसत्तमैः ।
भुज्यते स्वर्भवं सौख्यं मृत्युभीतीः कुतः सताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—पूर्वकालमैं भए गणधरादि सत्पुरुष ऐसैं दिखावैं हैं जो जिस मृत्युतैं भलेप्रकार दिया हुवाका फल पाइये अर स्वर्गलोकका

सुख भोगिये तातै सत्पुरुषकै मृत्युका भय काहेतैं होय। भावार्थ—अपना कर्तव्यका फल तो मृत्यु भये ही पाइए है जो आप छ्यकायके प्राणिनिकूं अभयदान दिया अर रागद्वेष काम क्रोधादिकका घातकरि असत्य अन्याय कुशील परधनहरणका त्यागकरि परमसंतोष धारण-करि अपने आत्माकूं अभयदान दिया ताका फल स्वर्गलोक विना कहां भोगनेमैं आवै सो स्वर्गलोकके सुख तो मृत्यु नाम मित्रके प्रसा-दतैं ही पाईए तातैं मृत्यु समान इस जीवका कोऊ उपकारक नाहीं। यहां मनुष्य पर्यायका जीर्ण देहमें कौन २ दुःख भोगता कितने काल रहता आर्तध्यान रौद्रध्यानकरि तिर्यंच नरकमें जाय पड़ता तातैं अब मरणका भय अर देह कुटुंब परिग्रहका ममत्वकरि चिंतामणि कल्पवृक्ष समान समाधिमरणकूं बिगाड़ि भयसहित ममतावान हुवा कुमरणकरि दुर्गति जावना उचित नाहीं ॥४॥ और हू विचारै है—

आगर्भाद्दुःखसंतप्तः प्रक्षिप्तो देहपञ्जरे।
नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्युभूमिपतिं विना॥ ५॥

अर्थ—यो हमारो कर्म नाम वैरी मेरा आत्माकूं देहरूप पींजरेमैं क्षेप्या सो गर्भमैं आया तिस क्षणमैं सदाकाल क्षुधा तृष्णा रोग वियोग इत्यादि अनेक दुःखनिकरि तप्तायमान हुवा पड्या हूं अब ऐसे अनेक दुःखकनिकरि व्याप्त इस देहरूप पींजरातैं मोकूं मृत्यु नाम राजा विना कौन छुड़ावै। भावार्थ—इस देहरूप पींज-

ऐसैं कर्मरूप शत्रुकरि पटक्या मैं इंद्रियनिके आधीन हुवा नाना त्रास सहूँ हूं नित्य ही क्षुधा अर तृषाकी वेदना त्रास देवै है अर सासती स्वास उच्छ्वासकी पवनका खेंचना अर काढ़ना अर नाना प्रकार रोगनिका भोगना अर उदर भरनै वास्तै नाना पराधीनता अर सेवा कृषि वाणिज्यादिकनिकरि महा क्लेशित होय रहना अर शीत उष्ण दुष्टनि करि ताड़न मारन कुवचन अपमान सहना कुटुंबके आधीन होना धनकै राजाकै स्त्री पुत्रादिककै आधीन रहना ऐसा महान् बंदीगृह समान देहमैंतैं मरण नाम बलवान राजा विना कौन निकासै? इस देहकूं कहां तांई बाहता जाकूं नित्य उठावना बैठावना भोजन करावना जल पावना स्नान करावना निद्रा लिवावना कामादिक विषयसाधन करावना नाना प्रकारके वस्त्र आभरणादिकरि भूषित करना रात्रि दिन इस देहहीका दासपना करता हूं आत्माकूं नाना त्रास देवै है भयभीत करै है आपा भुलावै है ऐसा कृतघ्न देहतैं निकसना मृत्यु नाम राजा विना नहीं होय जो ज्ञानसहित देहमों ममता छांड़ि सावधानीतैं धर्मध्यानसहित संक्लेशरहित वीतरागतापूर्वक जो समाधिमृत्यु नाम राजाका सहाय ग्रहण करूं तो फेरि मेरा आत्मा देह धारण ही नहीं करै दुःखनिका पात्र नहीं होय समाधिमरण नामा बड़ा न्यायमार्गी राजा है मोकूं याहीका शरण होहु मेरे अप-मृत्यका नाश होहु ॥ ९ ॥ और हू कहै हैं—

सर्वदुःखप्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः ।
मृत्युमित्रप्रसादेन प्राप्यन्ते सुखसम्पदः ॥ ६ ॥

अर्थ—आत्मदर्शी जे आत्मज्ञानी हैं ते मृत्युनाम मित्रका प्रसादकरि सर्व दुःखका देनेवाला देहपिंडकूं दूर छांडकरि सुखकी संपदाकूं प्राप्त होय हैं। **भावार्थ**—जो इस सप्तधातुमय महा अशुचि विनाशीक देहकूं छांडि दिव्य वैक्रियक देहमैं प्राप्त होय नाना सुख संपदाकूं प्राप्त होय है सो समस्त प्रभाव आत्मज्ञानीनिकै समाधि-मरणका है समाधिमरण समान इस जीवका उपकार करनेवाला कोऊ नहीं है इस देहमैं नाना दुःख भोगना अर महान रोगादि दुःख भोगि करि मरना फिर तिर्यंच देहमैं तथा नरकमैं असंख्यात अनं-तकालतांई असंख्यात दुःख भोगना अर जन्ममरणरूप अनंत परिवर्तन करना तहां कोऊ शरण नाहीं। इस संसार परिभ्रमणसों रक्षा करनेंकूं कोऊ समर्थ नाहीं है कदाचित् अशुभकर्मका मंद उदयतैं मनुष्यगति उच्चकुल इंद्रियपूर्णता सतपुरुषनिका संगम भगवान् जिनेन्द्रका परमागमका उपदेश पाया है। अब जो श्रद्धान ज्ञान त्याग संयमसहित समस्त कुटुंब परिग्रहमैं ममत्वरहित देहतैं भिन्न ज्ञायकस्वभावरूप आत्माका अनुभवकरि भयरहित च्यार आराध-नाका शरण सहित मरण हो जाय तो इस समान त्रैलोक्यमैं तीन कालमैं इस जीवका हित है नाहीं। जोसंसार परिभ्रमणतैं छूट जाना सो समाधिमरण नाम मित्रका प्रसाद है ॥ ६ ॥

मृत्युकल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः ।
निमग्नो जन्मजम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति ॥ ७॥

अर्थ—जो जीव मृत्यु नाम कल्पवृक्षकूं प्राप्त होतें अपना कल्याण नाहीं सिद्ध किया सो जीव संसाररूप कर्दममें डूबा हुवा पाछैं कहा करसी ? **भावार्थ**—इस मनुष्य जन्ममैं मरणका संयोग है सो साक्षात् कल्पवृक्ष है जो वांछित लेना है सो लेहु जो ज्ञानसहित अपना निजस्वभाव ग्रहणकरि आराधनासहित मरण करो तो स्वर्गका महर्द्धिकपणा तथा इंद्रपणा अहमिंद्रपणा पाय पाछैं तीर्थंकर तथा चक्रीपणा होय निर्वाण पावो । मरणसमान त्रैलोक्यमैं दाता नहीं ऐसे दाताकूं पायकरि भी जो विषयकी वांछा कषाय सहित ही रहोगे तो विषयवांछाका फल तो नरक निगोद है । मरण नाम कल्पवृक्षकूं बिगाड़ोगे तो ज्ञानादि अक्षयनिधानरहित भए संसारूप कर्द्दममैं डूब जावोगे अर भो भव्य हो जो थे वांछाका मारचा हुवा खोटे नीच पुरुषनिका सेवन करो हो अतिलोभी भए विषयनिके भोगनेकूं धन वास्तै हिंसा झुंठ चोरी कुशील परिग्रहमैं आसक्त भये निंद्यकर्म करो हो अर वांछा पूर्ण हू नहीं होय अर दुःखके मारे मरण करो हो कुटंबादिकनिकूं छांड़ि विदेशमैं परिभ्रमण करो हो निंद्य आचरण करो हो अर निंद्यकर्म करिकै हू अवस्य मरण करो हो अर जो एकवार हू समता धारण करि त्यागव्रत-

सहित मरण करो तो फेरि संसारपरिभ्रमणका अभावकरि अविनाशी
त्वकूं प्राप्त हो जावो तातैं ज्ञानसहित पंडितमरण करना ही
न है ॥ ७ ॥

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः ।
स मृत्युः किं न मोदाय सतां सातोत्थितिर्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस मृत्युतैं जीर्ण देहादिक सर्व छूटि नवीन हो जाय सो मृत्यु सत्पुरुषनिकै साताका उदयकी ज्यों हर्षके अर्थि नहीं होय कहा ? ज्ञानीनिकै तो मृत्यु हर्षके अर्थि ही है । **भावार्थ**—यो मनुष्यनिको शरीर नित्य ही समय समय जीर्ण होय है देवनिका देह ज्यों जरारहित नहीं है दिन दिन बल घटै है कांति अर रूप मलीन होय है स्पर्श कठोर होय है समस्त नसनिके हाड़निके बंधान शिथिल होय हैं चाम ढीली होय मांसादिकनिकूं छांड़ि ज्वरलीरूप होय है नेत्रनिकी उज्ज्वलता बिगड़े है कर्णनिमैं श्रवण करनेकी शक्ति घटै है हस्तपादादिकनिमैं असमर्थता दिन दिन बधै है गमनशक्ति मंद होय है चालते बैठते उठते स्वास बधै है कफकी अधिकता होय है रोग अनेक बधैं हैं ऐसी जीर्ण देहका दुःख कहां तक भोगता अर ऐसे देहका नींसणा कहां तक होता ? मरण नाम दातार विना ऐसे निंद्यदेहकूं छुड़ाय नवीन देहमैं वास कौन करावै ? जीर्ण देह है तिसमैं बड़ा

असाताका उदय भोगिये है सो मरण नाम उपकारी दाता विना ऐसी असाताकूं दूर कौन करै अर जे सम्यग्ज्ञानी हैं तिनके तो मृत्यु होनेका बड़ा हर्ष है जो अब संयम व्रत त्याग शील सावधान होय ऐसा यत्न करै जो फेरि ऐसे दुःखका भरया देहको धारण नहीं होय' सम्यग्ज्ञानी तो याहीकूं महा साताका उदय मानै है ॥ ८ ॥

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत् ।
मृत्युर्भीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥ ९ ॥

अर्थ—यो आत्मा देहमें तिष्ठतो हू सुखकूं तथा दुःखकूं सदा काल जानै ही है अर परलोकप्रति हू स्वयं गमन करै है तो परमार्थतें मृत्युका भय कौनकै होय। **भावार्थ**—जो अज्ञानी बहिरात्मा है सो तो देहमें तिष्ठता हू मैं सुखी मैं मरूं हूं मैं क्षुधावान मैं तृषावान मेरा नाश हुआ ऐसा मानै। अर अंतरात्मा सम्यग्दृष्टी ऐसै मानै है जो उपज्या है सो मरैगा पृथ्वीजलअग्निप वनमय पुद्गलपरमाणुनिके पिंडरूप उपज्यो यो देह है सो विनशैगो। मैं ज्ञानमय अमूर्तीक आत्मा मेरा नाश कदाचित् नहीं होय। ये क्षुधातृषावातपित्तकफादिरोगमय वेदना पुद्गलके हैं मैं इनका ज्ञाता हूं मैं यामैं अहंकार वृथा करूं हूं। इस शरीरकै अर मेरे एक क्षेत्रमैं तिष्ठनेरूप अवगाह है तथापि मेरा रूप ज्ञाता है अर शरीर जड़ है,

मैं अमूर्तीक, देह मूर्तीक, मैं अखंड एक हूं, शरीर अनेक परमाणुनिका पिंड है, मैं अविनाशी हूं, देह विनाशीक है अब इस देहमैं रोग तथा तृषादि उपजै तिसका ज्ञाता ही रहना मेरा तो ज्ञायक स्वभाव है परमें ममत्व करना सो ही अज्ञान है मिथ्यात्व है अर जैसें एक मकानकूं छांड़ि अन्य मकानमैं प्रवेश करे तैसें मेरे शुभ अशुभ भावनकरि उपजाया कर्मकरि रच्या अन्य देहमैं मेरा जाना है इसमैं मेरा स्वरूपका नाश नहीं अब निश्चयकरि विचारतैं मरणका भय कौनकै होय ॥ ९ ॥

संसारासक्तचित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणां ।
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञानवैराग्यवासिनां ॥ १० ॥

अर्थ—संसारमें जिनका चित्त आसक्त है अपना रूपकूं जे जानें नहीं तिनकै मृत्यु होना भयकै अर्थि है अर जे निजस्वरूपके ज्ञाता हैं अर संसारतैं विरागी हैं तिनकै तो मृत्यु है सो हर्षके अर्थि ही है। **भावार्थ**—मिथ्यादर्शनके उदयतैं जे आत्मज्ञानकरिरहित देहहीकूं आपा माननेंवाले अर खावना पीवना कामभोगादिक इंद्रियनिकै विषयनिकूं ही सुख माननेंवाले बहिरात्मा हैं तिनके तो अपना मरण होना बड़ा भयके अर्थि है जो हाय! मेरा नाश भया फेरि खावना पीवना कहां हू नहीं है नहीं जानिये मेरे पीछैं कहा होयगा कैसे मरूँगा अब यह देखना मिलना कुटंबका समागम सब

मेरे गया अब कौनका शरण ग्रहण करूँ कैसें जीऊँ ऐसे महा संक्लेश करि मरैं हैं अर जे आत्मज्ञानी हैं तिनके मृत्यु आये ऐसा विचार उपजै है जो मैं देहरूप बंदीगृहमैं पराधीन पड़या हुवा इंद्रियनिके विषयनिकी चाहनाकी दाह करि अर मिले विषयनिकी अतृप्तिताकरि अर नित्य ही क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगनिकरि उपजी महा वेदना तिनकरि एक क्षण हू थिरता नहीं पाई, महान दुःख पराधीनता अपमान घोर वेदना अनिष्टसंयोग इष्टवियोग भोगता महा संक्लेशतै काल व्यतीत किया अब ऐसैं क्लेश छुड़ाय पराधीनतारहित मेरा अनंतसुखस्वरूप जन्ममरणरहित अविनाशी स्थानकूं प्राप्त करनेवाला यह मरणका अवसर पाया है यो मरण महासुखको देनेवालो अत्यंत उपकारक है अर यो संसारवास केवल दुःखरूप है यामें एक समाधिमरण ही शरण है और कहूं ठिकाना नहीं है इस बिना च्यारों गतिनिमैं महा त्रास भोगी है अब संसारवासतैं अति विरक्त मैं समाधिमरणका शरण ग्रहण करूँ ॥ १० ॥

पुराधीशो यदा याति सुकृतस्य बुभुत्सया ।
तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैः पाञ्चभौतिकैः ॥ ११ ॥

अर्थ—जिस कालमैं यो आत्मा अपना कियाका भोगनेकी इच्छाकरि परलोककूं जाय है तदि पंचभूत संबंधी देहादिक प्रपंचनिकरि याकूं कौन रोकै ? **भावार्थ**—इस जीवका वर्तमान आयु पूर्ण

होो जाय अर जो अन्य परलोकसंबंधी आयुकायादिक उदय आ जाय तदि परलोककूं गमन करते आत्माकूं शरीरादिक पंचभूत कोऊ रोकनेकूं समर्थ नहीं हैं तातैं बहुत उत्साहितैं चार आराधनाका शरण ग्रहणकरि मरण करना श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

मृत्युकाले सतां दुःखं यद्भवेद्व्याधिसंभवं ।
देहमोहविनाशाय मन्ये शिवसुखाय च ॥ १२ ॥

अर्थ—मृत्युका अवसरविषै जो पूर्वकर्मका उदयतैं विनाशीक दीखै है अर देहका कृतघ्नपणा प्रकट दीखै है तदि अविनाशी पदके अर्थि उद्यमी होय है वीतरागता प्रगट होय है तदि ऐसा विचार उपजै है जो इस देहकी ममताकरि मैं अनंतकाल जन्ममरण नाना वियोग रोग संतापादिक नरकादिक गतिनिमैं दुःख भोग अब भी ऐसे दुःखदाई देहमैं ही फरि हू ममत्वकरि आपाकूं भूलि एकेंद्रियादि अनेक कुयोनिमैं भ्रमणका कारण कर्म उपार्जन करनेकूं ममता करूं हूं जो अब इस शरीरमैं ज्वर कास श्वास शूल वात पित्त अतीसार मंदाग्नि इत्यादिक रोग उपजैं हैं सो इस देहमैं ममत्व घटावनेंके अर्थि बड़ा उपकार करैं हैं धर्ममैं सावधानता करावैं हैं। जो रोगादिक नहीं उपजता तो मेरी ममता हू देहतैं नहीं घटती अर मद हू नहीं घटता, मैं तो मोहकी अंधेरीकरि आंधा हुवा आत्माकूं अजर अमर मान रह्या था सो अब यो रोगनिकी उत्पत्ति मोकूं चेत कराया अब इस देहकूं अशरण

जानि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपहीकूं एक निश्चय शरण जानि आराधनाका धारक भगवान परमेष्ठीकूं चित्तमैं धारणकरूं हूं। अब इस अवसरमैं हमारैं एक जिनेंद्रका वचनरूप अमृत ही परम औषधि होइ, जिनेंद्रका वचनामृत विना विषयकषायरूप रोगजनित दाहके मेटनेकूं कोउ समर्थ नाहीं। बाह्य औषधादिक तो असाता कर्मके मंद होने किंचित् काल कोउ एक रोगकूं उपशम करै अर यो देह अनेक रोगनिकरि भरया हुवा है अर कदाचित एक रोग मिट्या तो हू अन्य रोगजनित घोर वेदना भोगि फेरि हू मरण करना ही पड़ैगा तातैं जन्मजरामरणरूप रोगकूं हरनेवाला भगवानका उपदेशरूप अमृतहीका पान करूं अर औषधादि हजारां उपाय करते हू विनाशीक देहमैं रोग नहीं मिटैगा तातैं रोगतैं आर्ति उपजाय कुगतिका कारण दुर्ध्यान करना उचित नहीं। रोग आवते हू बड़ा हर्ष ही मानो जो रोगहीके प्रभावतैं ऐसा जीर्ण गल्या हुवा देहतैं मेरा छूटाना होयगा रोग नहीं आवै तो पूर्वकृत कर्म नहीं निर्जरै अर देहरूप महा दुर्गंध दुःखदाई बंदीगृहतैं मेरा शीघ्र छूटना हू नहीं होय अर यो रोगरूप मित्रको सहाय ज्यों ज्यों देहमैं बधै है त्यों त्यों मेरा रागबंधनतैं अर कर्मबंधनतैं अर शरीरबंधनतैं छूटना शीघ्र होय है अर यो रोग तो देहमैं है इस देहकूं नष्ट करैगा मैं तो अमूर्तिक चैतन्यस्वभाव अविनाशी हूं ज्ञाता हूं अर जो यो रोगज-

नित दुःख मेरे जाननेमें आवै है सो मैं तो जाननेवाला ही हूं याकी लार मेरा नाश नहीं है जैसें लोहकी संगतितैं अग्नि हू घणनिका घात सहै है तैसें शरीरकी संगतितें वेदनाका जानना मेरे हू है अग्नितें झूंपड़ी बलै है झूंपड़ीके माहिं आकाश नहीं बलै है तैसें अविनाशी अमूर्तिक चैतन्य धातुमय आत्मा ताका रोगरूप अग्निकरि नाश नहीं है अर अपना उपजाया कर्म आपकूं भोगना ही पड़ेगा कायर होय भोगूंगा तो कर्म नहीं छांड़ैगा अर धैर्य धारणकरि भोगूंगा तो कर्म नहीं छांड़ैगा तातैं दोऊ लोकका बिगाड़नेवाला कायरपनाकूं धिक्कार होहू कर्मका नाश करनेवाला धैर्य ही धारण करना श्रेष्ठ है। अर हे आत्मन्! तुम रोग आए एते कायर होते हो सो विचार करो नरकनिमैं यो जीव कौन कौन त्रास भोगी असंख्यात बार अनंत बार मारे विदारे चीरे फाड़े गये हो इहां तो तुमारे कहा दुःख है अर तिर्यंच गतिके घोर दुःख भगवान ज्ञानी हू वचनद्वारकरि कहनेकूं समर्थ नाहीं अर मैं तिर्यंच पर्यायमैं पूर्वे अनंतबार अग्निमें बलि बलि मरचा हूं अर अनंत बार जलमें डूबि डूबि मरचा हूँ अनंत बार सिंह व्याघ्र सर्पादिकनिकरि बिदारचा गया हूं शस्त्रनिकरि छेद्या गया हूं अनंत बार शीतवेदनाकरि मरचा हूँ अनंतबार उष्णवेदनाकरि मरचा हूं अनंत बार क्षुधा की वेदनाकरि मरचा हूं अब यह रोगजनित वेदना केतीक है? रोग ही मेरा उपकार

करै है। रोग नहीं उपजता तो देहतैं मेरा स्नेह नहीं घटता अर समस्ततैं छूटि परमात्माका शरण नहीं ग्रहण करता तातैं इस अवसरमैं जो रोग है सोहू मेरा आराधनामरणमैं प्रेरणा करनेवाला मित्र है ऐसैं विचारता ज्ञानी रोग आये क्लेश नहीं करै है, मोहके नाश करनेका उत्सव ही मानै है ॥ १२ ॥

ज्ञानिनोऽमृतसङ्गाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन् ।
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा ॥ १३ ॥

अर्थ—यद्यपि इस लोकमैं मृत्यु है सो जगतके आतापका करनेवाला है तो हू सम्यग्ज्ञानीकै अमृतसंग जो निर्वाण ताके अर्थि है। जैसैं काचा घड़ाकूं अग्निमैं पकावना है सो अमृतरूप जलके धारणके अर्थि है जो काचा घड़ा अग्निमैं नहीं पकै तो घड़ामैं जल धारण नाहीं होय है अग्निमैं एक वार पकि जाय तो बहुत काल जलका संसर्गकूं प्राप्त होय तैसैं मृत्युका अवसरमैं आताप समभावनि करि एक वार सहि जाय तो निर्वाणका पात्र हो जाय। **भावार्थ**—अज्ञानीकै मृत्युका नामतै भी परिणाममैं आताप उपजै है जो मैं अब चाल्या अब कैसे जीऊं कहा करूं कौन रक्षा करै ऐसे संतापकों प्राप्त होय है क्योंकि अज्ञानी तो बहिरात्मा है देहादिक बाह्य वस्तुकूं ही आत्मा मानै है अर ज्ञानी जो सम्यग्दृष्टी है सो ऐसा मानै है जो आयु कर्मादिकका निमित्ततै देहका धारण है सो अपनी स्थिति

पूर्ण भये अवश्य विनशैगा मैं आत्मा अविनाशी ज्ञानस्वभाव हूं जीर्ण देह छांड़ि नवीनमैं प्रवेश करते मेरा कुछ विनाश नाहीं है ॥ १३ ॥

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायासविडंबनात् ।
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्युकाले समाधिना ॥ १४ ॥

अर्थ,—यहां सत्पुरुष हैं ते व्रतनिका बड़ा खेदकरि जिस फलकूं प्राप्त होइये है सो फल मृत्युका अवसरमैं थोरे काल शुभ-ध्यानरूप समाधिमरणकरि सुखतैं साधने योग्य होय है । भावार्थ—जो स्वर्गमैं इंद्रादिक पद वा परंपराय निर्वाणपद पंच महाव्रतादिक घोर तपश्चरणादिककरि सिद्ध करिये है सो पद मृत्युका अवसरमैं जो देह कुटुंबादिसूं ममता छांड़ि भयरहित हुवा वीतरागता सहित च्यारि आराधनाका शरण ग्रहण करि कायरता छांड़ि अपना ज्ञायक स्वभावकूं अवलंबनकरि मरण करै तो सहज सिद्ध हो तथा स्वर्गलोकेमैं महर्द्धिक देव होय तहांतैं आय बड़ा कुलमैं उपजि उत्तम संहननादि सामग्री पाय दीक्षा धारण करि अपने रत्नत्रयकी पूर्णताकूं प्राप्त होय निर्वाण जाय है ॥ १४ ॥

अनार्तः शांतिमान्मर्त्यो न तिर्यग् नापि नारकः ।
धर्मध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनीत्वमरेश्वरः ॥ १५ ॥

अर्थ,—जाकै मरणका अवसरमैं आर्त्त जो दुःखरूप परिणाम नहीं होय अर शांतिमान कहिये रागरहित द्वेषरहित समभावरूप

चित्त हो सो पुरुष तिर्यंच नहीं होय नारकी नहीं होय अर जो धर्मध्यानसहित अनशनव्रत धारण करके मरै सो तो स्वर्गलोकमें इंद्र होय तथा महर्द्धिक देव होय अन्य पर्याय नहीं पावै ऐसा नियम है। **भावार्थ**—यो उत्तम मरणको अवसर पाय करिकैं आराधना-सहित मरणमैं यत्न करो अर मरण आवतें भयभीत होय परिग्रहमैं ममत्व धारि आर्त्त परिणामनिसों मरणकरि कुगतिमें मत जावो। यो अवसर अनंतभवनिमैं नहीं मिलैगा अर मरण छांड़ैगा तातैं सावधान होय धर्मध्यानसहित धैर्य धारणकरि देहका त्याग करो ॥ १५ ॥

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च ।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना ॥ १६ ॥

अर्थ,—तपका संताप भोगनेका अर व्रतनिके पालनेका अर श्रुतके पढ़नेका फल तो समाधि जो अपने आत्माकी सावधानी सहित मरण करना है। **भावार्थ,**—हे आत्मन्! जो तुम इतने काल इंद्रियनिके विषयनिमैं वांछारहित होय अनशनादि तप किया है सो अनंतकालमें आहारादिकनिका त्यागसहित संयमसहित देहकी ममतारहित समाधिमरणके अर्थि किया है अर जो अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्यागादि व्रत धारण किये हैं सो हू समस्त देहादिक परिग्रहमैं ममताका त्याग करि समस्त मनवचनकायतें आरंभादिक त्यागकरि समस्त शत्रू मित्रनिमैं वैर राग छांड़करि उपसर्गमैं धीरता धारणकरि अपना एक

ज्ञायकस्वभावको अवलंबनकरि समाधिमरण करनेके अर्थि किये हैं अर जो समस्त श्रुतज्ञानका पठन किया है सो हू संक्लेशरहित धर्मध्यानसहित होय देहादिकनितैं भिन्न आपकूं जानि भयरहित समाधिमरणके निमित्त ही विद्याका आराधनकरि काल व्यतीत किया है अर मरणका अवसरमैं हू ममता भय राग द्वेष कायरता दीनता नहीं छांड़ोगे तो इतने काल तप कीने व्रत पाले श्रुतका अध्ययन किया सो समस्त निरर्थक होयगे तातैं इस मरणके अवसरमैं कदाचित् सावधानी मत बिगाड़ो ॥ १६ ॥

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जनवादः ।
चिरतरशरीरनाशे नवतरलाभे च किं भीरुः ॥ १७ ॥

अर्थ--लोकनिका ऐसा कहना है जो जिस वस्तुका अतिपरिचय अतिसेवन हो जाय तिसमैं अवज्ञा अनादर होजाय है रुचि घटि जाय है अर नवीनका संगममैं प्रीति होय है यह बात प्रसिद्ध है अर हे जीव! तू इस शरीरको चिरकालसे सेवन किया अब याका नाश होते अर नवीन शरीरका लाभ होतें भय कैसैं करो हो भय करना उचित नहीं। **भावार्थ**,--जिस शरीरकुं बहुतकाल भोगि जीर्ण कर दीना साररहित बलरहित हो गया अर नवीन उज्ज्वल देह धारण करनेका अवसर आया अब भय कैसैं करो हो? जीर्ण देह तो विनसैहीगो इसमैं ममता धारि मरण बिगाड़ि दुर्गतिका कारण कर्मबंध मत करो ॥ १७ ॥

शार्दूलविक्रीडितम् ।

स्वर्गादेत्य पवित्रनिर्मलकुले संस्मर्यमाणा जनै-
र्दत्त्वा भक्तिविधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनं ।
भुक्त्वा भोगमहर्निशं परकृतं स्थित्वा क्षणं मण्डले,
पात्रावेशविसर्जनामिव मृतिं सन्तो लभन्ते स्वतः ॥ १८ ॥

अर्थ—ऐसैं जो भयरहित होय समाधिमरणमैं उत्साहसहित चार आराधनानिकूं आराधि मरण करै है ताकै स्वर्गलोग बिना अन्य गति नहीं होय है स्वर्गनिमैं महर्धिक देव ही होय है ऐसा निश्चय है बहुरि स्वर्गमैं आयुका अंतपर्यंत महासुख भोगि करिकै इस मनुष्यलोकविषै पुण्यरूप निर्मल कुलमैं अनेक लोयनिकरि चिंतवन करते करते जन्म लेय अपने सेवकजन तथा कुटुंब परिवार मित्रादि जननिकूं नाना प्रकारके वांछित धन भोगादिरूप फल देय अर पुण्यकरि उपजे भोगनकूं निरंतर भोगि आयु प्रमाण थोड़े काल पृथ्वीमंडलमैं संयमादि सहित वीतरागरूप भये तिष्ठ करके जैसे नृत्यके अखाड़ेमें नृत्य करनेवाला पुरुष लोकनिकै आनंद उपजाय निकल जाय है तैसैं वह सत्पुरुष सकल लोकनिकै आनंद उपजाय स्वयमेव देह त्यागि निर्वाणकूं प्राप्त होय है ॥ १८ ॥

दोहा ।

मृत्यु महोत्सव वचनिका, लिखी सदासुखकाम ।
शुभ आराधन मरण करि, पाउं निज सुख धाम ॥ १ ॥
उगणीसै ठारै शुकल, पंचमि मास अषाढ ।
पूरण लिखि बांचो सदा, मन धरि सम्यक गाढ ॥ २ ॥

निवेदन।

सोनासण (प्रांतिज) निवासी गांधी नहालचंद सांकलचंदके पुत्र जुठाभाईका स्वर्गवास सं० १९६९ चैत्र वदी १४ को सिर्फ सत्रा वर्षकी आयुमें हुआ था। उनके स्मरणार्थ शास्त्रदानके लिये कुछ रकम निकाली गई थी। उस रकमसे 'दिगंबरजैन' के ग्राहकोंको 'समाधिमरण' ग्रन्थ उपहारमें देनेकी हमें सूचना मिली थी जिससे यह ग्रन्थ 'दिगंबर जैन' के ग्राहकोंको नौवें वर्षका छठा उपहारस्वरूप वितरण किया जाता है। आशा है कि ऐसे शास्त्रदानका अनुकरण हमारे अन्य भाई भी करेंगे।

प्रकाशक।

Printed by Moolchand Kisondas Kapadia at his 'Jain Vijaya' printing press, near Khapatia-chakla, Laxminarayan's wadi–SURAT.

Published by Moolchand Kisondas Kapadia from Khapatia chakla, Chandawadi–SURAT.

ओंनमः सिद्धम्

समाधिशतक

जिसको

मुं० नाथूराम-बुकसेलर ने

सर्व जैनी भाइयों के हितार्थ

"लक्ष्मीनारायण" प्रेस

मुरादाबाद में

छपाकर प्रकाशित किया.

प्रथमबार   सम्वत् १९६२   मूल्य =)

पुस्तकें मिलने का पता-

मुंशी नाथूराम बुकसेलर-कटनी मुड़वारा

जि० जबलपुर.

ओं नमः सिद्धम् ।

अथ-

समाधिशतक भाषा

प्रारभ्यते ॥

दोहा ।

श्री आदीश्वर चरणयुग, प्रथम नमों चितल्याय ।
प्रगट क्रियोयुग आदि रूप, भजत सुमंगलथाय ॥१॥
सन्मति प्रभुसन्मति करन, वन्दत विघ्न विलात ।
पुनः पंच परमेष्ठि को, नमोत्रिजग विख्यात ॥२॥
गौतम गुरु फिर शारदा, स्याद्वाद जिस चिन्ह ।
मंगल कारण तास को, नमों कुमतिहो भिन्न ॥३॥
मंगल जिननामिंद्र श्री, अरिहन गुरु निर्ग्रंथ ।

दया रूप वृषपोत भव, वारिधि शिवपुर पंथ ॥ ४॥
इस बिधि मंगल करन से, रहत उदंगल दूर ।
विघ्न कोटि तत्क्षण टरें, तम नाशत ज्यों सूर ॥५॥
श्री सर्वज्ञ सहाय मम, सुबुधि प्रकाशो आनि ।
तो कवित्त दोहान में, रचों समाधि वखानि ॥ ६॥
मरण समाधि करें सु जो, सो नर जग गुण खान।
इन्द्र चक्रपति हो पुनः, अनुक्रम लें निर्वाण ॥७॥
देख गुमानीराम को, वचन रूप सुप्रबन्ध ।
लघुमति ता संकोचि के, रचे सु दोहा छंद ॥ ८॥
पिंगल व्याकरणादि कुछ लखा नहीं मति बाल ।
कंठ राखने के लिये, रचों बाल वत ख्याल ॥ ९ ॥
लघु धी तथा प्रमाद से, शब्द अर्थ लख हीन ।
बुधजनसोधिउचारियो, हंसोनलख मतिक्षीण।१०।
मंद कषायों से जु हों, शांति रूप परणाम ।
तब समाधिविधि आदरे मरण समाधिसुनाम ।११॥
सो मैं अब दृष्टान्तयुत कहों त्रियोग सम्हार ।

भवि अहिनिशिपढियोसुयह. करपरणाम उदार ॥

छप्पय छन्द ।

सूता ज्यों गृह सिंहनाहि इक पुरुष विचक्षण ।
जाग्रत किय ललकार सिंह उठ देख ततक्षण ।
हतन वृन्द रिपु तोहि निकट आया यहतेरे ॥
सावधान हो चेत करो पुरुषारथनेरे ।
जबलों रिपु कुछ दूर है कर सम्हाल जीतो तिन्हैं ॥
यह महत्पुरुष की गतिहै ढील किये आवतकनें १ ३
वचन सुनत यों सिंह गुफा से वाहर आयो ।
गर्जो घन जिमि सुनो शत्रु हिय थिर न रहायो ॥
जीतन को असमर्थ वाजि हस्ती सब कांपे ।
निर्भय हरि पौरुष सम्हाल नहीं सके जो जापे॥
त्यों सम्यक्ज्ञानीनरसुधी मरणसमयविधिसेनलख।
तिहिजीतननिजपौरुषसजेसकलउपाधिकभावनख
आवत काल तटस्थ देख तब साहस ठाने ॥
कर्म संयोग सदेह इता स्थिति पूर्ण जाने ॥

ताही से मम योग्य कार्य अब ढील न कीजे ।
जो चूकों यह दाव घोर सन्सार पड़ीजे ॥
अतिकठिनकाकतालीयज्योंमनुजजन्मशुभदशलहा।
सोवृथागमायाधर्मविनदौडदौड़चहुंगतिवहा ॥१५॥
कर कषाय अति मन्द क्षमादिक दशवृष ध्यावे ।
अन्तर आतम माहि शुद्ध उपयोग रमावे ॥
करे राग रूप मोह शिथिल अतिहीसो ज्ञानी ।
निरालम्ब चिद्रूप ध्यान धर बहु गुण खानी ॥
तव रच रम स्वाद आवघनोअतुल भिन्नपांचादव्य ।
इमनिश्चयदृष्टिविलोकतालहैसुक्खजोअकथअव॥
आनंद रत नित रहे ज्ञान मय ज्योति उजारी ।
पुरुषाकार अमूर्ति चेतना बहु गुण धारी ॥
एसा आतमदेव आप जानत बुधि पारी ।
पर द्रव्यों से किसी भांति ना होवेरागी ॥
निज वीतरागज्ञाता सुथिरअविनाशीपरजहलखा।
वपुपूरनगलन असास्यताइमजखानिजानिजरसचखा॥

समदृष्टी नर सदा मरण का भय ना माने ।
आयु अंत जब लखे स्वहित तब या विधि ठाने ॥
आयु अलप इस देह तनी अब रही दिखावे ।
अब करना मम चेत सावधानी यह दावे ॥
जिम रण भेरी के सुन नहीं सुभट जाय रिपु पर झुके ।
त्यों काल बली के जीतने साहस ठाने भव चुके ।१८।
सब जिय सोच विचार लखो पुद्गल पर जायी ।
देखत उत्पति भई देखते अब खिर जायी ।
मैं मरूं इम लखो विनाशिय पहिले याको ॥
सो अब अवसर पाय खिरै जासी यह ताको ।
मम ज्ञायक दृष्टा रूप निज ताहि सब विधि आदरों ॥
अब किस विधि देह नशे जु यह मैं तमाशगीरी करों
मम स्वरूप दृग ज्ञान सुक्ख वीर्य अनन्त मय ।
नर नारक पर्याय भेद बहु भये मृषानय ॥
जो पदार्थ त्रैलोकके सु तिन ही के कर्त्ता ।
मैं चिन अमल अडोल नहीं तिन कर्त्ता हर्त्ता ॥

वेआपहि विछुडे मिलें पूरे गलें अचित सदा।
तो देह रखाया क्योंरहे भूल भर्म न पड़ों कदा२०॥

सवैया २३। काल अनादि भरो दुःखमैं पर द्रव्योंसे एकहि जानो।कालबली दृढगढ ग्रसौ लहि जन्म जरामरण फिर ठानो।खेदलहो वशमोहतने सु विचार सजें अव भूलदिखानो। मैं निज ज्ञायक भावनको कर्त्ता अरु भुक्त सदा स्थिर जानो॥२१॥

मोसत्संगसे देहपुजे जगमां निकसे तनको सब जारें। मानत देहरु जीव एकत्र नश यहतो शठ रोय पुकारें। हाय पिता त्रियपुत्र कलत्र सुमात हितू कहां जाय पधारें। और अनेक विलाप करें अति खेद कलेश वियोग पसारें॥ २२॥

एम विचार करें सु विचक्षण अक्षण देख चलो जग जाई। कौन पिता त्रिय पुत्र हितू सो क-लत्र यहां किनकी कौन माई॥ को गृह माल कहा धन भूषण जात चली किन की

ठकुराई। ये सबवस्तु विनस्वर ज्यों स्वप्नमेंराज्यकरे नर भाई ॥ २३ ॥

देखत इष्ट लगे यह वस्तु विचारत ही कुछ नाहिं दिखावे। सो इम जान ममत्व सुभान त्रिलोक में पुद्गल जो दृढ आवे। देह स्नेह तजो तिस ही विधि रञ्चक खेद नमो चित पावे॥ जाउरहो यह देह प्रतक्ष विगार सुधार न मोह लखावे ॥ २४

देखहु मोहतनी महिमा पर द्रव्य प्रत्यक्ष विनाशिक हेरी। है दुख मूल उभय भवमें जगजीव सबे इसमाहिं फंसेरी। मूरख प्रीतिकरे अतिही अपना तन जान खावन हेरी। मैं इकज्ञायक भाव धरें सो लखों इस काल शरीर को वेरी ॥ २५ ॥

दोहा।

माखी बैठे खांड पर, अग्नि देख भग जाय।
काल देहको त्यों भखे, मो लख थिर न रहाय२६
मरण योग्य पहिले भआ. जीया मृतक न होइ।

मरण दिखावत नाहि मम, भर्मगया सबखोय २७

सवैया २३ चेतन के मरणादिक व्याधि लखी न त्रिलोक त्रिकाल मझारा। तो अब सोच करो किम काज अनन्त दृगादिक भावको धारा। ता अवलोकत दुःख नशे ममज्ञान पियूषसुपूरितसारा। ज्ञायक ज्ञेयनको यह जीवपै ज्ञेयमे भिन्न अनाकुल न्यारा॥ व्यापक चेतन ठौरहीठौर यथा इकलौन डलीरस पागी। त्यों मैं ज्ञान का पिंडहूं पै व्यवहारमे देहप्रमाणसो लागी॥ निश्चय लोक प्रमाणाकार अनंत सुखामृतमे अनुरागी। मूनमही गल मोमगयो नभ युक्त तदाकृति देखहु मागी ॥ २९ ॥

दोहा ।

मैं अकलंक अवंक थिर. मिलन न काहू मांहि ।
नशो देह भावे रहो, हमें न किहि विधि चाहि ३०

छप्पय छंद ।

कहै एक नर सोच देह तुम्हरी तो नाहीं ।

पर याके संग ध्यान शुद्ध उपयोग लहाहीं ।
एतावत् उपकार कहो सुन थिर चित भाई ॥
रत्न द्वीप नर जाय एक झोंपड़ी बनाई ।
बहुरत्न एकठाकर अग्निलगी बुझावे तबसुघर ।
जबबुझत न जाने झोंपड़ी रत्नलेभाग सुनर३१

दोहा ।

त्यों मम संयम गुण सहित, रहो देह ना वैर ।
नशत उभय तो जानिये, संयम राखो घर ॥३२॥
संयम रहता देह बहु, क्षेत्र विदेहा जाय ।
नृप कृग चक्री इंद हो, अनुक्रम शिव थल पाय ३३
मोह भगो आकुल गई ध्यान त्रिगावे कौन ।
इन्द्र चक्र धनेंद्रसुर विष्णु महेश्वर जौन ॥ ३४ ॥

सवैया–देह स्नेह करी किम कारण यह वपु ज्यों चपला चमकाई । नाहिं उपाव रखावन का बहु औषधि मंत्ररु तंत्र बनाई । जो थितिपूरण होइ तबे सुर इन्द्र नरेंद्र हरी मृत्व थाई । दाव बनो

हितसाधनकोबहुलोगचिगावहिं मैं न चिगाई ३५

(कुटुंबादि ममत्व त्याग) छप्पयछंद।

अब कुटुम्ब के लोग सुनो हित सीख हमारी।
ए ताही सम्बन्ध देह तुम्हरो अबधारी।
तुम राखत ना रहै सोच अपना कर भाई।
यह गति सब की होइ चेत देखो पितु माई।
मो करुणाआवति तुम तनीखिद धार क्यों दुःखभजो।
वृषधारयोग नितसुथिर हो ममत्वतनमसअबतजो ३६

सवैया-जो दृढ़ ध्याधि ग्रमे तन अन्त सु वेदना दुर्जय आवत तेरी। कारण तास तने परणाम त्रिग लख साहस से बुधि फेरी। पूरब संचित कर्म उदय फल आय लगा गद ने वपु घेरी। भिन्नसदा मम रूप निराकुलहै शरणानिज आतमकेरी२७।

छप्पय छन्द।

शरण पंच परमेष्ठि बाह्य जिन वृष जिन वाणी।

रत्नत्रयदश धर्म शरण सुनहो चिद ज्ञानी ।
और शरण कोइ नाहि नेम हमने यह धारो ।
इस विधि से उपयोग थाम कर एम विचारो ।
अरिहन्त देव गुरुद्रव्य गुण पर्यायन निर्णय करे ।
तबनिज सुरूपमें आयकरसाहससेदृढथितिधरै ३८

(माता पिता ममत्व त्याग)

सवैया २३-वपु मातपिता तुम एममुनो ममदेह स्नेह बृथा तुमधारो।को तुमको मैं हाटतनी गति प्रातपयानकरंजन मारो।रीतीभरें घटरहंट तनीतुम अन्तरके दृगखोल विचारो । आपतनो दृढ सोच करो तुम आतम द्रव्य अनाकुल न्यारो ॥३६॥

छप्पय छंद ।

यह सब भक्षी काल काल से बचे न कोई ।
देव इन्द्र थिति पूर्णदेख मुख रहे जु सोई ॥

यम किंकर लेजांय आपनी कथा कौन है ।
तन धारे सो मरे वृथा कर खेद जो न है ॥
यह आजकाल मुवा मनुजसुनप्रतीतिना आदरो।
यह निरोपाय जगरीतिहै जिनवृषभजमोहमधरो।

(स्त्री ममत्व त्याग)

सवैया २३-हेत्रिय देहतनी सुनसीखस्नेह तजो वपुमे अव प्यारी । देहरुतो सम्बन्ध इतो अव पूर्ण हुओ नहिंखेद पसारी।कायमेरे नहीं या तनमे तुम राखहु नाहिं रहै तन नारी। पुद्गलकी पर्याय त्रिया नर सोच लखो दृग खोल निहारी ॥ ४१ ॥

छप्पय छंद ।

भोगतुरे भव रोग वढावन वैरीजो के ।

* यम=समय काल और व्यवहार काल वर्ष महीने आदि काल के भागसो यम किंकर जानने अर्थात् अंत समय जो घडी मुहूर्त शेष आयुका निकट आना सो यम किंकर हैं ।

होवे विरस विपाक समय लगें सेवत नीके ॥
एकेंद्री वश होइ विपति अति मे दुख पायो।
कुंजर झख अलि सलभ हिरण इन प्राण गमायो॥
पंच करन वश होइ जो कुगति घोर दुःख पावही
इन त्याग त्रिया संतोष भज जो ममनार कहावही॥

भोग किये चिरकाल घने त्रियकार्य सरो न कछू सुख पायो।इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग निरन्तर आकुलताप तपायो।दुर्लभ जन्म सुवीतगयो अब कालके गालहि में वपु आयो।सो त्रियराखन कौन समर्थ वृथा करखेद सो जन्म नशायो ॥४३॥

छप्पयछंद।

जो प्यारी मम नारि सीख हित चित्त धरीजो।
शीलरत्न दृढ़ राखतत्व श्रद्धाण सु कीजो॥
धर्म विना भव भ्रमे काल बहु हम तुम सबही।
गति चारों दुःखरूप धरी वृष गहो न कबही।

अब मम सुख वांछे नार तू वृष दृढाव तज आमतें ।
तुम भावनको फलभोग ही शीघ्र जाहु मोपासतें ४४

दोहा ।

नारि बुलाय सम्बोधि इम, सीख दई हितसाज ।
अवानिज पुत्र बुलाइयो, ममत्व निवारण काज ४५

पुत्रादि ममत्व त्याग छप्पयछंद ।

पुत्र विचक्षण सुनो आयु पूर्ण अवम्हारी ।
तुम ममत्व बुधि तजो खेद दुःख को करतारी ।
श्री जिनवर कर धर्म भलीविधि पालन कीजो ।
पूजा जप तप दान शीलसम्यक्त्व गहीजो ।
फिरलोक निंद्यकार्य तजो साधर्मिन से हित करो ।
तुमयुग भव सुख होहै सु सुत सीख हमारी उरधरो ४६

सवैया २३ देह अपावन वस्तु जगत्रय की या संग से मैली । कर्म गहीं घन अस्थि जड़ी अरु चर्म मढ़ी मल मूत्र की थैली । नव मल द्वार स्र-

वैं वसु जाम कुवास घिनावन की वपु गैली ।
पोपत हो दुःखदोप कर सुत सोखत याहि मिले
शिव सेली ॥ ४७ ॥

दोहा ।

जो तुम राखें देह यह, रहै तो राखो धीर ।
मैं बरजों नातोहि सुत, करो सोच निज वीर॥४८॥
मैं अनुक्रमसे गति सवनि, यहीं होइगी मीत ।
जिन वृप नवका बैठ के भव जल तर तज भीति४९
दया बुद्धि से सीख मैं, दई तोहि लख पीर ।
होन हार तुम होइ जो, रुचे सो कीजो धीर५०
यों कह सब परिवार त्रिय, सुत मित्रादिक भूर ।
मरण बिगाड़न लख तिन्हें, किये पास से दूर५१
जो भ्राता सुत आदि गृह, भारचलावन योग ।
सौंप ताहि हित सीखदे, तज जगतका रोग॥५२॥
और मनुष्यों मे कछू बतलाने को होइ ।
ते बुलाय बतलाय कुछ, सल्य न राखे कोइ ५३॥

दया दान अरु पुण्य को जो कुछ मन में होइ ।
सो अपने करमें करे, करे विलम्ब न कोइ ५४॥
साधर्मी पंडित निकट. राखे इम बतलाय ।
मो परणाम लखो थिरे तुम दृढ कीजो भाइ॥५५॥

छप्पय छंद ।

अब सम दृष्टी पुरुष काल निज निकटमु जाने ।
तब सम्हाल पुरुषार्थ सत्य तज साहस ठाने ॥
शक्ति सार धर नेम एम मर्यादा लीजे ।
कर परिग्रह परिमाण रूप निज अनुभव कीजे।
यह संशय मन होइ जो पूर्ण आयु नहीं कदा।
तो जावज्जीव न त्यागिये शनै शनै त्यागतदा॥

सवैया २३।शक्तिप्रमाण कहा गुरुत्यागपे शक्ति छिपाय नहीं कुछ त्याग।शक्ति छिपाय के त्याग करे तो प्रमादका दोष समाधिको लाग।ओर अभक्ष्य जानत औषधिधातु रसादिकसे नहीं पाग।छोड जगत्त्रयकी आशा तब अन्तर आतमज्योतिसुजाग॥

छप्पय छंद ।

उतर खाट से भूमि माहिं दृढ आसन माडे ।
साधर्मिन को निकट से मु इक टुक नहीं छांडे ।
शिथिल होइ जो भाव कहा अनुभव से कोई ।
कर विचार पुन तत्व देव गुरु निर्णय जोई ।
इम खेंच थाप उपयोग शुचि आत्म रूप रमावही ।
इम काल व्यतीत करे मुनज्ञानपद निकटथिति आवही ।

दोहा ।

तब द्वादश भावन भजे, तीक्ष्ण दुःख हो हान ।
सो वरणों संक्षेप मे, भवि नित करो बखान ५९॥

सवैया—यौवनरूप त्रियातन गोधन भोग विनश्वर हैं जगमाईं । ज्यों चपला चमके नभमें जिमि मंदिर देखत जात बिलाई । देव खगादि नरेंद्र हरी मरते न बचावत कोई सहाई । ज्यों मृगको हरिदौड दले बन रक्षक ताहि न कोई लखाई॥ ६० ॥

जीव भ्रमैं गतिचार सहै दुःख लाख चौरासीकरे नितफेरी। पै न लहो सुख रंच कदा संसारको पार लहो न कदेरी। पूर्व जो विधिबन्ध किये फल भोगत जीव अकेलहि तेरो। पुत्र त्रिया नहीं शीर करैं सबस्वार्थ भीर करें वपु केरी ॥ ६१ ॥

ज्यों जल दूधको मेलजियातन भिन्न सदानहीं मेलको धारो। तो प्रत्यक्ष जुदे धनधाम मिलें न कभी निज भाव मझारो। देह अपावन अस्थि पलादिकी रोग अनेक सो पूरित सारो। मूत्र मलादिक श्रवै सुगलो नवद्वार श्रवैं किमि कीजिये प्यारे ॥ ६२ ॥

आस्रव से यह जीव भ्रमें भवयोग चलाचल से उपजेंगे। दुःख लहो चिरकाल घनो रचि जो बुधि-वन्त तिन्हें सुतजेंगे। पुण्यरुपापदुहू तजके निज आतम की अनुभूति सजेंगे। आवत कर्मनको वर-जें तव संवर भाव सुधी सु भजेंगे ॥ ६३ ॥

कर्म झडें निजकालहि पायन कार्य सरे तिनमे

जिय केरो। जो तपसे विधि हानिकरें कर निर्जरा से शिवमाहि बसेरो। जो षटद्रव्य मई यह लोक अनादिको है न करो किहि केरो।एक जिया भ्रम तो चिरको दुःख भोगत नाहि नजे भवफेरो॥६४॥

अन्तम ग्रीवक हद लहो पद सम्यक ज्ञाननहीं कहूं पायो॥ आतमबोध लहो न कभी अति दुर्लभ जो जग में मुनि गायो। मोहमे भाव जुदे लखके दृगज्ञान वृतादिक भाव बतायो॥धर्म वही कहिए परमारथ या विधि द्वादश भावना भायो॥६५॥

दारुण वेदना आयुके अंतमें देहसरूप अनित्य विचारो। दुःख रु सुक्ख तो कर्मनकी गति देहवधो विधि के संग मारो। निश्चयमे ममरूप दृगादिक देहरु कर्मन से निन न्यारो तो मुझे दुःखकहा वपु के संग पूर्व कर्म विपाक चितारो ॥ ६६ ॥

देहनशो बहुबार जो अत्र इमी विधि अन्त सु कष्ट लहायो।पैं न लखो निजआतम रूप नहीं कहुं

जन्म समाधिहि पायो। या भव में सब योगवनो निज कार्य सुधारनको मुनिगायो। कर्म अरीहरि मोक्ष त्रियावर पूरण सुक्ख लहो सु सवायो॥६७॥

काल अनादि भ्रमो जिय एकहि पंच परावर्तन कर फेरी। द्रव्य रु क्षेत्र सुकाल तथा भवभाव कथा तिनकी बहुतेरी॥वार अनन्त किये तहां पूर्ण अन्त लहो भवका न कदेरी। को वरने दुःखकी जु कथा गणराज थके बुधि अल्पजु मेरी ॥ ६८ ॥

नित्य निगोद सुभौन तजी नज जो व्यवहार राशि कहूं आयो॥भाग्य उदय त्रिसकायधरी विकल त्रय में रुलखेद लहायो। वा पंचेंद्रिय होइ पशुःसब ला न हनो निबला हनखायो॥भूख तृषा हिमताप तपो अतिभार वहो दृढ बन्धन पायो ॥ ६९ ॥

देह तजी अति शंकट भावन मे नव सुभ्रतनी गतिधायो। भूमितहां दुःख रूप इसी मनुकोटिन विच्छुन ने डसखायो। देह तहां कृमिरोगन पूरित

कंटक सेजन से जु घिसायो। घातकरैं द ॥ सेंमल के निज वैर भजो असुरान भिड़ायो ॥ ७० ॥

मेरु प्रमाण गले तहां लोह हिमा तप याविधि को मुनिगायो। नाज भखें सबलोक तनो न मिटे गद एक कणा न लहायो। सागर नीर पिये न बुझे तृष्णा जल बूंद न दृष्टि लखायो। को वरणे स्थितिसागरकीकहूं भाग्यउदय नरकीगतिआयो॥

वासकियो नव मास अधोमुख मात जनेदुःखमे जु घनेरो।बालपने गददन्त पलादिक ज्ञान विना न भने बचनेरो। यौवन भामिन संगरचे ज कषाय जलो गृह भार वडेरो। पुत्र उछाह सु हर्ष बढ़ा सु वियोग मे आकुल ताप तपेरो ॥ ७२ ॥

द्रव्य उपार्जन कष्ट सहे अब यों करनो यह तो हम कीनो। संतत जोग नतो दुःख भोग कुपुत्र कुनार तने दुःख भीनो। पीड़ित रोग दरिद्र फंसे अति आकुल से कर बन्ध नवीनो। आरति ठान

भली सिख मान सो मूढ़ कभी सत्संग न कीनो ७३

वृद्ध भयो तृष्णा जु दहो मुख लार बहै तन हालत सारा। वस्त्र सम्हाल नहीं तन की वृप की जु कथा तहां कौन उचारो। काल अचानक कंठ दव तब खाय विना वृप यों तन प्यारो। चेतन कूच कियो तन से सुकुटुम्बक इन्धनसे वपु जारा॥

निर्जरा कीन अकाम कभी लहि स्वर्ग तनी गति सुक्ख सुमानो। हो विषया रस मत्त तहां अति आतुर भोग न चाह दहानो। देख विभव पर क्रूर डसो जम माल लखी चयते विललानो। आरति से मर कर्म ठगो जिय फेर भवार्णव में भरमानो॥ ७५॥

यों जु भ्रमो चिरकाल जिया विन सम्यक सुक्ख समाज न पायो। जन्म जरा मरणादिक रोग क-लेश तनो कहुं अंत न आयो। आप स्वरूप वि-सार रचे पर दुःख चितारत फाटत कायो। तो अब

यो दुःख नाहिं कछू लख सम्यक की दृढ़चेतनरायो।

दोहा।

इम चिंतन कर वेदना, सवे निवारे सूर।
फिर निर्भय नरसिंह वत कहा करै हितपूर ॥७७॥

छप्पयछंद।

शक्ति वचन की रहै जैन श्रुत मुख से गावे।
या विन वचन न कहै नेम धर ममत्व नशावे ॥
निकट आयु लख प्रहरचार द्वै इक दिनकेरी।
चउ विधि तज आहार परिग्रह द्वै विधिटेरी।
पुनशक्ति देखतज जीव वहजुदी जुदी शक्तिःधरे।
इमनेम जाव जियत्यागाहितसाधनमनकसरपरे७८
अंत सल्लेषणा माइ आराधना चउ विधि ध्यावे।
क्षण २ कर सम्हाल भाव कहूं डिगन न पावे।
कारहद तत्व प्रतीति धार सम्यक निरखेदे।
वेदना तीक्ष्ण निपट ताहि अन्तर नहीं वेदे।

जब वचन बंद होता लखे तब सुवचनसे यों कहब।
तुमजिनवानीपढियोजुवहुग्रमत कालयहदहअब॥

दोहा ॥

परमेष्ठी पांचोनको, रूप सु उर में धार।
नमस्कार हित युत करे, फिर फिर कर शिरधार ८०
जैनधर्म जिन बिंब अरु, जिन वाणी जिनधाम।
शुद्ध भावसे देव नव, तिनको कर प्रणाम॥८१॥
कृत्याकृत्यम जिन भवन, सिद्ध क्षेत्र भवतार।
तिन को वन्दों भावमे, युगल पान शिरधार॥८२॥
उत्तम क्षमा समस्त से, कर हित मिति बतलाय।
आप क्षमा करवाय के, वैर न राखे भाय॥८३॥
मौन लहै तब धीर सो, अन्तर के दृग खोल।
तजे राग रुष मोह सब, कर परणाम अडोल॥८४॥
जबलों शिथिल न होइ तन, इंद्रिय बल मन दौर।
तबलों अनुभव कीजिये, प्रभु आतम गुण ओर॥८५
शिथिलपडी जब जानिये, इंद्रिय तन मन द्वार।

तब नव कार उचारिये महा मंत्र जग सार ॥८६॥
सवैया ३१—ज्ञानविनानर नारिपशुःहुइ योग मिले बड़ भाग मझारे। प्राण तजे नवकार उचारत तो गति नीच तनी न पधारे। अंजन चोर करी मृगराज अजामुन आदि जपे नवकारे। स्वर्ग तनो सुख वेग लया शुभ बीजमे वृक्ष यथा शुभसारे॥ ८७॥

दोहा ॥

मरण समय औषधि निपुण, दुःख नाशक सुखमूल।
बार बार मंत्रहि जपे, तजे जगति दुःख शूल॥८८॥
मेटे वांछा सकल पुन, करे न बन्ध निदान।
रत्नछोड़ काच न ग्रहे, त्यों समाधि फल जान ८९

सवैया ३१ जीव प्रदेश खिचे तनमे दुःखमे नहीं आकुल ताप तरंग। जीति परीपह हो सुखरूप निरंतर सो नवकार जपेंग। आसन जो शुचि होइ जिया शुभ ध्यान धरे वसु कर्म छिपेंग। कंठ लगे कफ आन जब शुभ मूल मंत्रे दश प्राण चपेंग ९०

दोहा ॥

या विधि अधिक सम्हालसे, तजे देह सुख भौन।
शुभगति सन्मुख होइ कर, जीव करै गति गौन॥६१॥

छप्पयछंद।

जो समाधि आदर तासु वान्छा मन चावे।
कर उदार परणाम ताहि निशिदिन ही ध्यावे।
कब आवे वह घडी समाधि सु मरण करोंगो।
अंत सल्लेषण माड़ कर्मरिपु से जु लड़ोंगो।
यह चाहरहै निशिदिन जब कुगति बन्धनानरकेरा।
सम्यक्त्वदान जग पूज्यहो निश्चय से शिवत्रियवर
पंचम काल कराल में न संयम जोगाई।
पर समाधि आदर ताम महिमा अधिकाई।
ताफल सुर गति लहै इंद्र चक्री नर राई।
हो सब जग सुख भोग विदेहां जन्म लहाई।
सुखभोगधार तपकर्महर शिव सुन्दरि परणे सुजन।
मुखएकथकीवरणोंसुकिमधन्यसमाधिमहिमासुभन।

दोहा।

देह अशुचि शुचि को यहां, कुछ न विचार करेह।
पढ़ पाठ मंत्राहि जपे, अशुचि सदा यह देह ९४
श्री कास्यप क्रम यमल को.नम विक्रम हियआन।
द्वादायम दोपा सुधर, मूर्द्धन क्षनद विहान ९५
नरक कला भ्रन ताम रुच,रस्मिन उदय रहन्त।
शतक समाधि सु विस्तरो। तब लग जग जय वन्त

सवैया।२३।मंगलमे बहु विघ्न नशैं यह पाठ सुपूर्ण मंगल कीने। है निमित्त वड वीर दई शिख श्रावक प्रर उदासिग भीने। रासन कंठ सुहत रचे सब जीव पढ़ सु समाधिहि चीन्हे। ताम प्रमाण श्लोकन का युग मे जु पचास कहै जु नवीने ९७ नाम समाधि शतक्क यथा इक मे इक छन्द कवित्त सुकीने। कर्ता मूल जिनेश गणी क्रम से सो राम गुमानी जीने। ता अनुसार सो प्राण पुरामह छंद रचे लघु धी बदलीने। लच्छमणदास

सो भ्रात बड़े तिन ने यह सोधि समापतिकीने

दोहा ॥

इक नव युग [illegible] युग धरें, शुभ सम्बत्सर जान ।
भाद्रव धवल [illegible] [illegible]ाज गुरु, पूर्ण किया विधान ९९
यामें छन्द र[illegible] इते. दोहा पैंतालीस ।
पुन छप्पय इ[illegible]महैं. कवित्त रचे पैंतीस ।१००॥
संख्या सब श्लोक मिल, युगशत और पचास ।
अल्प बुद्धि बरणो सु यह बुधजन सोधो जासु १०१

इति समाधि शतक छन्द बन्ध सम्पूर्णम्

शुभम् भवतु !!!

हमारी घरू छपाई जैन पुस्तकों का
सूचीपत्र ।

।।) ज्ञानानन्द रत्नाकर तीनों भागों की छापनी एकत्र ।)जैन सिद्धान्त प्रथम पुस्तक।।)जैन सिद्धान्त द्वितीय पुस्तक ।=) जंबू स्वामी चरित्र ।=) दान कथा।~) तत्वार्थ सूत्रार्थ वचनका ।) जैनव्रत कथा संग्रह ६ रत्न ।) स्वानुभव दर्पण सटीक योगसार भाषा ।) चेतन चरित्र ≈) सज्जन चित्त वल्लभ सटीक ≈) निशिभोजन कथा ≈)छहढाला बुधजन सटीक =)।। छहढाला द्यानत सटीक =) भक्तामर सटीक =) पंच परमेष्ठी संग्रह =) समाधिशतक कवित्तादि में =) रक्षा बन्धन कथा =) रविव्रत कथा बड़ी =) जैन भजन संग्रह प्र० भाग ५० पद =) जैन भजन संग्रह द्वितिय भाग ५० पद ~)।। छहढाला दौलतराम ~)।। गाँगी संग्रह २४ तीर्थकर की पृथक २ स्तुति २४ ~)। होली और प्रभाती संग्रह ~)। राजुल पचीसी ~) स्तोत्र संग्रह ~) विनती संग्रह ~)अकलंक स्तोत्र सटीक ~) आलोचना पाठ सटीक ~) बाईस

परीषह ~) पंच कल्याण मंगल ~) उपदेश पचीसी पुकार पचीसी ~) नेमीश्वर विवाह दो तरह के)||| बारह मासा राजुल)||| बारह मासा प्रश्नोत्तर)|||आरती संग्रह)|||भक्तामर मूल काव्य)||| बारहभावना दो तरहकी)||| निर्वाण कांड दो तरह की)||| सप्तऋषि पूजा भाषा)||| जिनगुण-मुक्तावली)||| विषापहार भाषा)||| परमार्थ जकड़ी रामकृष्ण और १२ मासी)||| सामायिक भाषा)||| समाधिमरण और तीर्थ वंदना)||| बारहमासा सीता)|| बारहमासा मुनिराज)|| धार्ँ मय नयमाल)|| जकड़ी दौलतराम)|| शास्त्रोद्धार आदीश्वर विवाह)|| साधु वंदना.

अपना स्थान डाकखाना जिला अवश्य लिखो यदि ऐसा न लिखोगे तो पारसल वा उत्तर न भेजेंगे।

द० मुन्शी नाथूराम बुकसेलर कटनी मुड़वारा.

सप्तऋषिपूजाभाषा

पंडित मनरंगलाल कृत

जिसको

मुंशी नाथूराम लमेचू ने सर्व जैनी
भाइयों के हितार्थ

लाला भगवानदास जैन के

लखनऊ

जैनप्रेस में छपाकर प्रकाश किया

प्रथमबार १००० न्यौछावर

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ सप्तऋषिपूजाप्रारंभः ॥

॥ छप्पय ॥

प्रथम नाम श्री मन्व दुतिय स्वर मन्व ऋषीश्वर । तीसर मुनि श्रीनिचय सर्व सुंदर चौथोवर ॥ पंचम श्री जयवान विनय लालस षष्टम भनि । सप्तम जय मित्राख्य सर्व चारित्र धाम गनि॥ ये साता चारण ऋद्धिधर करों तास पद थापना । मैंपूजों मन वच काय कर जो सुख चाहूं आपना॥

ॐ ह्रीं चारण ऋद्धि सहित व्राजमान

सप्त ऋषीश्वर जिनाय अत्र वत्र व-
तरसंबौषट्ह्वाननं अत्रातिष्ठ तिष्ठठःठः
स्थापनं,अत्र मम सन्निहितो भव भव
व्षिट संधीम करणं ॥ अथाष्टकं गीता
छंद ॥ शुभ तीर्थ उद्भव जल अनूपम
मिष्ट शीतल लयायके । भव तृषा कंद
निकंद कारण शुद्ध घट भरवायके ॥ म-
न्वादि चारण ऋद्धि धारक मुनिनकी
पूजा करों ॥ ताकरैं पातिक हरैं सारे
सकल आनंद विस्तरों । ॐह्रीं श्रीमन्व
स्वर मन्व निचय सर्व सुंदर जयवान
विनयलालस जय मित्र सप्त चारण

ऋषेभ्यो जलं ॥१॥ श्रीखण्ड कदली नंद केसरि मन्द मन्द घिसाय के। तसु गंध प्रसरितदिङ्ग दिगंतर भरिकटोरा भायके॥ मन्वादि०॥ सुगंध ॥२॥ अति धवल अक्षिन खण्ड वर्जित मिष्ट रा-जन भोग के ॥ कलधौत थारा भरित सुंदरचुनित शुभउपयोगके॥ मन्वादि० अक्षितं॥ ३ ॥ बहु वर्ण सुवरण सुमन आछे अमल कमल गुलावके। केतकी चम्पा चारुमरुआ चुने निजकर चावके मन्वादि०॥ पुष्पं ॥ ४ ॥ पक्वान नाना भांति चातुर रचित शुद्ध नये नये।

सद शिष्ट लाडू आदि भरि बहुपुर ढके थारालए ॥ मन्वादि०॥ नैवेद्यं ॥५॥ कलधौत दीपक जड़ित नाना भरित गो घृत सारसो। अति ज्वलित जग मग योति याकी तिमर नाशन हारसो मन्वादि०॥ दीपं ॥६॥ दिकचक्र गं- धित होत जाकर धूप दश अंगीकही। सो ल्याय मन वच काय शुद्ध लगाय कर खेऊं मही ॥ मन्वादि० ॥ धूपं ॥७॥ वरदाख खारक अमित प्यारे मिष्ट मिष्ट चुनाय के ॥ द्रावड़ी दा- ड़िम चारु पुंगी थाल भर भर लायके

मन्वादि चारण ऋद्धिधारी मुनिन की पूजा करों। जाकरें पातिक हरें सारे सकल आनन्द विस्तरों॥ फलं ॥८॥ जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु वर दीप धूप सु ल्यावना। फल ललित आगे द्रव्य मिश्रत अर्घ कीजे पावना॥ मन्वादि०॥ अर्घं॥ जयमाल॥ त्रिभंगी छन्द ॥ वन्दों ऋषिराजा धर्म जहाजा निज परकाजा करत भलं। करुणा के धारी गगण विहारी दुख अपहारी भरम दलें॥ काटन यम फन्दा करत अनन्दा भविजन वृन्दा चरण नमें।

जो पूजें ध्यावें मंगल गावें फेर न आवें भव बन में ॥ पद्धड़ी छन्द ॥ जय श्री मन्व मुनिराजा महंत। त्रस थावर की रक्षा करन्त ॥ जय मिथ्या तम नाशक पतंग। करुणा रस पूरित अंग अंग ॥ १ ॥ जय श्री स्वर मन्व अकलंक रूप। पद सेव करत नित अमर भूप॥ जय पंच अक्ष जीते महान। तप तपत देह कंचन समान ॥ २ ॥ जय निश्चय सप्त तत्वार्थ भास। तप रमा तनो मनमें प्रकाश ॥ जय विषयरोध सम्बोध मान। पर परणति नाशन अ

चल ध्यान ॥ ३ ॥ जय जयहि सर्व सु
न्दर दयाल । लखि इंद्र जालवत ज-
गति जाल । जय तृष्णाहारी रमण
राम । निज परणति मे पाया आराम
॥ ४ ॥ जय आनंद घन कल्याण रूप
। कल्याण करत सबको अनूप ॥ जय
मद नाशन जयवान देव । निरमद बि-
चरत सब करत सेव ॥ ५ ॥ जय जयः
विनय लालस अमान । सब शत्रुमित्र
जानत समान ॥ जय कृशितकाय तप
के प्रभाव । छवि छटा उठति आनंद
दाय ॥ ६ ॥ जय मित्र सकल जगके

सुमित्र । अन गिनत अधम कीने प
वित्र ॥ जय चन्द्र बदन राजीव नयन
कबहू विकथा बोलत न वयन ॥ ७ ॥
जय सातो मुनिवर एक संग । नित
गँगण गमन करते अभंग ॥ जय आये
मथुरापुरमझार । तहां मरी रोगकाअ
तिप्रचार ॥ ८ ॥ जयजयतिन चरणों
के प्रसाद । सब मरीदेव कृत भई
बादि ॥ जय लोक करे निर्भय समस्त
हम नवन सदा तिन जोड़ि हस्त ९ ॥
जय ग्रीष्मऋतु पर्वत मझार । नित
करत अतापन योगसार ॥ जयतृषा

परीषह करत जेर । कहुं रंच चलत नहिं मन सुमेर ॥ १० ॥ जयमूल अ-ट्ठाइस गुणनधार । तप उग्र तपत आनंदकार ॥ जय वर्षाऋतु में वृक्षतीर । तहां अति शीतल झेलत समीर ११ जय शीतकाल चौपट मंझार । के नदी सरोवर तट विचार ॥ जय निवसत ध्यानारूढ़ होय । रंचक नहिं मटकत रोमकोय ॥ १२ ॥ जय मृतकासन व-ज्रासनीय । गोदूहन इत्यादिक गनीय जय आसन नाना भांति धार । उपसर्ग सहत ममता निवार ॥ १३ ॥ जय ज-

पत तिहारो नाम कोय । तस पुत्रपौत्र कुल वृद्धिहोय ॥ जय भर लखि अतिशय भंडार । दारिद्र तनो दुख होय छार ॥ १४ ॥ जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच। अरुईतिभीतिसबनशतसांच जय तुम सुमरत सुख लहत लोक । सुरअसुर नवतपद देत धोक ॥ १५ ॥

* घत्ताछंद *

ये साता मुनिराय महातप लक्ष्मी धारी। परम पूज्यपद धरें सकल जगके हितकारी ॥ जो मन वचतन शुद्धहोय सेवे अरु ध्यावें । सोनर मनरंगलाल अष्टऋद्धिन को पावे ॥

❋ दोहा ❋

नवन करत चरणनि परत, अहो गरीब निवाज। पंचपरावर्त्तननि से, निरवारो ऋषिराज॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

॥ इति श्रीसप्तऋषिपूजाभाषासमाप्तं॥

पुस्तक मिलने का ठिकाना

"जैनमित्र" वर्ष २७ अंक ३६का क्रोडपत्र।

श्रीमहावीराय नमः ॥

मुनि श्री शांतिसागर पूजा

रचयिता—

ब्रह्मचारी प्रेमसागरजी जैन-रैपुरा नि० ।

श्रीमान् लाला नेमदासजी आनरेरी मजिस्ट्रेट (सुपुत्र
श्रीमान् लाला धनकुमारदासजी) श्रीकायतनगर
(नि० बारहसैनी) निवासीने मुनिदानके
हर्षोत्सवमें सर्वत्र प्रचारार्थ निज
द्रव्यसे प्रकाशित किया।

"जैनविजय" प्रिंटिंग प्रेस-सूरतमें मूलचन्द किसनदास
कापड़ियाने मुद्रित किया।

प्रथमावृत्ति प्रति १५००	वीर सं० २४५२ आषाढ़	मूल्य सदुपयोग।

"जैनमित्र" वर्ष २७ अंक ३६का क्रोडपत्र।

श्रीमहावीराय नमः ॥

मुनि श्री शांतिसागर पूजा

रचयिता—

ब्रह्मचारी प्रेमसागरजी जैन-रैपुरा नि०।

श्रीमान् लाला नेमदासजी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट (सुपुत्र श्रीमान् लाला धनकुमारदासजी) टीकायतनगर (जि० बारहबंकी) निवासीने मुनिदानके हर्षोत्सलक्षमें सर्वत्र प्रचारार्थ निज द्रव्यसे प्रकाशित किया।

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस—सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

द्वितीयवार प्रति १५००	वीर सं० २४५२ आषाढ़	मूल्य सदुपयोग।

प्रथमवारकी प्रस्तावना।

गत कार्तिक मासमें मैं श्री १००८ मुनिश्री शांतिसागर, श्री १००८ श्री मुनि आनन्दसागर, श्री १००८ मुनि सूर्य-सागरजी महाराजके दर्शनोंको ललितपुर गया था और वहां १ माह रहा था तब मैंने अपने हृदयमें यह विचार किया कि श्री मुनि महाराजोंकी पूजन रचूं, किन्तु वहां मेरी इच्छा पूर्ण न हुई। फिर मैं मुंगावलीसे दौरा (उस समय मैं भारतवर्षीय दि० जैन परिषदका प्रचारक था) करता हुआ पछार (गवालियर) आया और श्री १००८ मुनिश्री ज्ञानसागर महाराजके व क्षुल्लक नेमसागर महा-राजके दर्शन किये और फिर समय पाकर वहां पं० राजकुमारजीकी सम्मतिसे तीनों मुनि महाराजोंकी पूजन समुच्चय रची जो भाई दुलीचंद पन्नालालजी परवार जिनवाणी कार्यालय कलकत्तावालोंने प्रकाशित करनेको ले ली है जो शीघ्र ही प्रगट होवेगी।

श्री १००८ मुनिश्री शांतिसागरजी महाराज शिखरजीकी यात्राको जा रहे हैं और उनके साथ मैं भी भक्तिका प्रेरा जा रहा हूं, मैंने भक्तिवश श्री मुनिमहाराजकी यह पूजन लखनऊमें रची है जिसकी जयमालामें मुनिराजका परिचय भी दिया है। आशा है हमारे जैनी भाई इस पूजनको पसंद करेंगे और उसमें जो त्रुटियां हों उन्हें सुधारनेकी कोशिश करेंगे। इसको श्रीमान् लाला दामो-

दरदासजीके सुपुत्र लाला बरातीलालजी लखनऊ निवासीने मुनि आगमनके समय अपने द्रव्यसे प्रकाशित कराकर धर्म प्रचारार्थ मुफ्त वितरण किया था। निवेदक—ब्रह्मचारी प्रेमसागर जैन।

द्वितीयवारकी प्रस्तावना।

श्री १००८ मुनि श्री शांतिसागरजी तथा श्री १००८ मुनि श्री मुनिंद्रसागरजी महाराजने लखनऊसे श्री अयोध्याजी यात्रार्थ विहार किया। मार्गमें बारहबंकीसे हमारे टिकायतनगरके अनुमान १९ भाई साथमें चले और महाराजको टिकायतनगर ले आये। इसी अवसरमें हमलोगोंके तीव्र पुण्योदयसे जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी भी काशीसे यहां आगये। अब क्या कहना था चारों ओर चतुर्थकालका समय और मूर्तिमान धर्म दिखलाई देता था। प्रतिदिन मुनिमहाराज और ब्रह्मचारीजीका धर्मोपदेश होता था जिसे सुनकर लोग आनन्दसागरमें मग्न होजाते थे। बहुत लोगोंने अनेक प्रकारकी प्रतिज्ञायें ग्रहण कीं। महाराजजी ४ दिवस यहां रहे और खूब धर्मप्रभावना हुई। जब यहांसे मुनि महाराजजी अयोध्याजीकी तरफ चले तो यहांके सब भाई भक्तिवश फिर पूर्ववत् अयोध्याको चल दिये। रास्तेमें बराबर आहारदान देते हुये सकुशल सब लोग श्री अयोध्याजी साथ [illegible] पहुंच गये।

इन्हीं दिवसोंमें दो दिन श्रीमान् लाला नेमदासजी ऑ० मजिस्ट्रेट (सुपुत्र लाला धनकुमारदासजी) टिकायतनगर निवासीको मुनिद्वय महाराजको आहार दान देनेका शुभ संयोग प्राप्त हुआ, जिसके हर्षोपलक्षमें आपने यह पुस्तक प्रचार हेतु छपवाकर वितरण की है। आशा है सब लोग इससे पुण्योपार्जन करेंगे। रत्नपुरीमें पहुंचकर श्री १००८ मुनिश्री मुनेंद्रसागरजीको आहारदान देनेका शुभ अवसर मुझे भी प्राप्त होगया। उस समय जो आनन्द मुझे प्राप्त हुआ वह अपूर्व और अकथनीय था। भक्तिवश आनन्द प्रवाहमें प्रवाहित होकर मैंने एक भजन रच डाला जो इसी पुस्तकमें प्रकाशित किया जाता है। त्रुटियोंके लिये क्षमा प्रार्थी–

पन्नालाल जैन (चन्द्र) टिकायतनगर (जि० बाराबंकी)।

मेरा खास निवेदन।

जैनी मात्रसे मेरा यह खास निवेदन है कि जिस प्रकार आप लिखे हुए ग्रन्थोंकी तथा पुस्तकोंकी विनय करते हैं उसी तरह छपी हुई पुस्तकोंकी भी विनय करना आपका धर्म है। इसलिये आप इस पुस्तकको विनयके साथ रखिये। अविनय करना महा पाप है तथा ज्ञानावरणीय कर्मके बंधका कारण है। ब्र० प्रेमसागर जैन।

श्रीमहावीराय नमः।

श्री मुनि शान्तिसागरजीकी पूजन।

स्तुति।

दिगम्बर साधु पद पूजों, यही भवसिन्धु बारक हैं। टेक।
अथिर जग जानकर सारा, हृदय वैराग्य विस्तारा।
परिग्रह भार सब टारा, मोह–भटके संहारक हैं॥ १॥
महाव्रतका पहिन बख्तर, समिति हथियार पांचो ले।
प्रबल इन्द्रीविजय करते, महा करुणाके धारक हैं॥ २॥
क्षुधादिक बीस दो भारी, परीषह सहन करते हैं।
सदा निजको सुमरते हैं, सुखद समताके धारक हैं॥ ३॥
यही शिव पंथ दर्शाकर, जगत-जलमे उबारेंगे।
हुआ यह "प्रेम" को निश्चय, दिगम्बर साधु तारक हैं। टेक।
मूल गुण वैसुबीस पालन, जपत आतम–रामको।
व्रतसमित दश हथियार ले, जीतो महाभट कामको॥
ऐसे श्री मुनि शांतिसागर, के युगलपद कँजकी।
पूजन करूं वसु द्रव्य ले, मम पीर नाशे बन्धकी॥

ॐ ह्रीं श्री अट्ठाईसमूलगुणपालक श्री शांतिसागर मुने अत्र अवतर अवतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

उज्जल सलिलको छान करके, हेम कलशनमें भरो।
त्रयधार चरणों देहुं स्वामी, रोग मम [1]तीनों हरो ॥
जय शांति सिंधु यती परम गुरु, धर्मके अवतार हो।
जय जगत जीवनको तुम्हीं प्रभु, शर्मके दातार हो ॥ जलं
केशर कपूर मगाय निर्मल, नीरमें मिश्रित करों।
संसारताप मिटाहु स्वामी, यह अरज तुमसे करों ॥
जय शांति सिन्धु० ॥ सुगंधं ॥
उज्जल अबीधे शालि तंदुल, धोय थालीमें धरों।
अक्षय महापद दीजिये, शुभ पुंजमें पूजन करों ॥
जय शांति सिन्धु० ॥ अक्षतं ॥
तन्दुल अबीधे धोय केशर, रंगसे पीरे करों।
यह पुष्पके शुभ पुंज अर्चूं, काम-ज्वर मेरो हरो ॥
जय शांति सिन्धु० ॥ पुष्पं ॥
रस सहित नाना भांतिके, पकवान मैं ताजे करों।
मम भूखदूषण मेटिये, नैवेद्यसे पूजन करों ॥
जय शांति सिन्धु० ॥ नैवेद्यं ॥
कर्पूरका दीपक प्रजालों, भावसे आरति करों।
मम मोहतमको नाश कीजे, यह अरज तुमसे करों ॥
जय शांति सिन्धु० ॥ दीपं ॥

---

१ (जन्म, जरा, मृत्यु)

दस तरहकी अति सुगन्धित, धूप खेऊँ अग्निमें ।
नाशिये वसु कर्म मेरे, रहूं होकर मग्नि मैं ॥
जय शांति सिन्धु० ॥ धूपं ॥

मिष्ट फल बहु भांतिके, ताजे चढ़ाऊं आपको ।
मुक्तिका फल दीजिये, सब नाश कर भवतापको ॥
जय शांति सिन्धु० ॥ फलं ॥

जल गंध अक्षत आदि आठों, द्रव्यको मिश्रित करों ।
अति हर्ष युत गुण गाय करके, अर्घसे पूजन करों ॥
जय शांति सिन्धु० ॥ अर्घं ॥

प्रत्येक अर्घ ।

षट् प्रकार जीवनपर करुणा पालते ।
अरु हित मित सत वचन, सुमुखसे भाषते ॥
नहीं अदत्तादान किसी विधि चाहते ।
सहस अठारह दोष, शीलके टालते ॥
द्विविधि परिग्रहसे रहित, निजपदमें अनुरक्ति ।
सो गुरु पूजो अर्घ सों, लहूँ कर्मसे मुक्त ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रत पालक शांतिसागर मुनिभ्यो अर्घं० ।

चार हाथ भू देख, गमन किरिया करें ।
हित मित मीठे बचन, सो मुखसे उच्चरें ।।
एक बार आहार, शुद्ध दिनमें करें ।
शास्त्रादिक भु देख, उठावें ना धरें ।।
मल मूत्रादिक छोड़ते, देख भूमि निर्जन्तु ।
सो गुरु पूजों अर्घसे, कटें कर्मके फंद ।।

ॐ ह्रीं पंचसमितिपालक श्री शांतिसागरमुनिभ्यो अर्घं० ।

सपरस रसना घ्राण, नयन अरु कानको ।
अपने वसमें करें, न छोड़ें ध्यानको ।
प्रतिक्रमणको करें, करें नित वंदना ।
स्तुति अरु स्वाध्याय, में लागे दोष ना ।
जीव मात्रपर सदा ही धारें समता भाव ।
सो गुरु पूजों अर्घ सों, पाकर उत्तम दाव ।।

ॐ ह्रीं पंच इन्द्रियवशकारक और षट्आवश्यक पालक श्री शांतिसागरमुनिभ्यो अर्घं० ।

नाहिं करें स्नान–न, धोवें दशनको
केशलौंच भूश्यन, न धारें वसनको ।।
एक वार लघु असन, खड़े लेवें यती ।
वे ही कर्म खिपाय, होंय शिवतिय पती ।।

ये सातों हैं शेष गुण, सो पालें मुनिराय ।
तिनके चरणसरोजको, नमत "प्रेम" मनलाय ॥
ॐ ह्रीं शेष ७ गुणधारक श्री शांतिसागरमुनिभ्यो अर्घं० ।

अथ जयमाल ।

नमूं त्रियोग सम्हाल, श्री शांतिसागर मुनी ।
तिन गुणकी जयमाल, कथूं बुद्धि अनुसार मैं ॥

पद्धड़ी छंद ।

जय शांति सिन्धु मुनिवर दयाल, जय षट् जीवनके रक्षपाल ।
जय जय मिथ्यातम हरण चन्द्र, जय जय नाशक जग पाप फन्द ॥
जय पश्चिम दिश मेवाड़ प्रान्त, जहँ उदयपुर है राज्य शांन्ति ।
तहँ पर इक छाणी ग्राम जान, केशरियाजीके निकट मान ॥२॥
जहँ हूमड़ जातिय भागचन्द्र, मुनि शांति सिन्धु तिनके ही नन्द ।
माता मणिका बाई प्रवीण, तिन कुक्ष्य श्री मुनि जन्म लीन ॥
पितु मात कियो परलोक वास, उन जीवित ही थे जग उदास ।
फिर तीस वर्षकी उमर पाय, सम्मेद शिखर वंदनको जाय ॥४॥
सप्तमि प्रतिमा तहँ लई धार, जीत्यो जग विजयी सुभट मार ।
नहि ब्याह कियो नहि भये गृहस्थ, रहते थे बालपने विरक्त ॥५॥
इस पदमें बीते तीन वर्ष, फिर क्षुल्लक पद धारो सहर्ष ॥
मुनि पदमें बीते ढाई साल, बावीस परीषह सहत हाल ॥६॥

चारित्र तनो उपदेश देत, सुर नर नारी बहु नियम लेत ।
आवत अजैन बहु दर्श हेत, त्यागत अभक्ष्य दृढ़ नियम लेत ॥७॥
गत वर्ष ललितपुर चतुर्मास, कीनों भवियनकी हरी प्यास ।
श्री शिखर सम्मेद यात्रा निमित्त, जाते करते बहु पुर पवित्र ॥८॥
लखनऊ नगरमें जैन बाग, आये दिन बारस चैत मास ।
प्रभू वीर भये जबतें निर्वाण, चौविससौ बावन है प्रमान ॥
तुम्हरो प्रभाव अति बढ़ो सोय, दर्शनको आवें सबहि लोय ।
लख नग्न भेष आश्चर्यमान, उचरें मुखसे जय जय सो बान ॥
तुम गुण महिमा बरणी न जाय, वश भक्ति गुंथी जयमाल गाय ।
जो पूजे पद हिय हर्ष धार, सो 'प्रेम' अचल पद लहे सार ॥१०॥

घत्ता—

जय जय मुनि राजा, धर्म जिहाजा, आतम काजा, करत भले ।
मैं पूजूं ध्याऊं, निज गुण गाऊं, पुण्य—कमाऊं, पाप गले ॥

ॐ ह्रीं श्री अट्ठाईसमूलगुणपालक श्री शांतिसागर मुनिभ्यो: अर्घं० ।

जो नर नित श्री शांतिसिंधु, मुनिवरको ध्यावे ।
पूजे चरण सरोज, वही वांछित फल पावे ॥
रोग शोक दारिद्र आदि, संकट कट जावे ।
" प्रेम " पुण्य उपजाय, पापका पुंज नशावे ॥

(इत्याशीर्वाद:)

दोहा ।

प्रथम चैत्र सुदि चतुर्दशी, शुभ दिन था रविवार ।
चौविससौ बाउन परम, सम्वत् वीर विचार ॥
तब यह श्री मुनिराजकी, पूजन करी समाप्त ।
उर आंशा पूरी भई, फूल उठो सब गात ॥
नाहीं पढ़ा व्याकरण मैं, नहिं पिङ्गलका ज्ञान ।
त्रुटियां सकल सम्हालियो, जान मोहि अज्ञान ॥
श्री गुरुचरण सरोजका, है उर अंतर वास ।
तामे कुछ कविता करूं, हरूं हृदयकी प्यास ॥
एक और मम प्रार्थना, सुन लीजे दे चित्त ।
पुस्तककी अविनय कभी, करना नाहीं मित्र ॥

निवेदक—प्रेमसागर ब्रह्मचारी ।

गुरुस्तुति ।

देखो तो इन जैन यतीको, कैसा ध्यान लगाते हैं ।
तिनके चरणाम्बुजकी रजको, हम निज शीश चढ़ाते हैं ॥टेक
पावश काल मेघमालामे, सारा नभ घिर जाता है ।
दामिन दमकत तड़ तड़ तड़कत, अन्धेरा छा जाता है ॥

ऐसे समय श्री मुनि ज्ञानी, तरुतल ध्यान लगाते हैं ।
पावशकी बाधा सब जीतत, सो मुनि कर्म नशाते हैं ।।देखो।।

शीतकाल जाड़ेकी बाधा, संसारी नहिं सहन करें ।
गरम वस्त्र ऊनी बनवाते, और बहुतसे यत्न करें ।।
किन्तु मुनी ऐसे अवसर पर, अपनेमें रमजाते हैं ।
सरिता तटपर ध्यान लगाते, कर्मकलंक नशाने हैं ।।देखो।।

उष्ण कालमें दिनकर अपनी, तेज किरण फैलाता है ।
हरे वृक्ष वा सरिता सरके, जलको शीघ्र सुखाता है ।।
ऐसे अवसरपर गुरु ज्ञानी, शिलपर ध्यान लगाते हैं ।
कर्मशत्रुपर विजय प्राप्त कर, अविनाशी पद पाते हैं ।।दे०।।

तिल तुष मात्र परिग्रह नाहीं, नहीं विषय भोगोंमे प्रीति ।
रत्नत्रयकी माला जपते, कर्म शत्रुकी करते जीत ।।
ऐसे साधु दिगम्बरको ही, हम नित शीश नमाते हैं ।
"प्रेम" भूल कर विषयी गुरुको, कभी न मनमें लाते हैं ।।दे०।।

चरणसेवक—ब्रह्मचारी प्रेमसागर जैन ।

भजन ।

गरभ जन्म जहं धर्मनाथको, रत्नपुरी शुभ आये ।
न्हाय धोय पूजा अर्चा करि, निज हित असन कराये ॥१॥
शिष्य शांतिसागर मुनिके इक, सिन्धु मुनीन्द्र कहाये ।
असनहेत हम आवत देखे, देखत मन हुलसाये ॥२॥
अत्र तिष्ठ तिष्ठ हे स्वामिन्, कहि करके पड़गाहे ।
उच्चासन दै करि बैठाये, पुनि पदजुग पखराये ॥३॥
चरणोदक शुभ वंदन कीनो, अर्घ सप्रेम चढ़ाये ।
तीनि प्रदक्षिणा दीनी मुनिढिग, पुनि साष्टांग नमाये ॥४॥
मन वच काया भोजन शुद्धि, जलयुत शुद्धि बताये ।
भोजन थान आय श्री मुनिवर, सिद्ध सुभक्ति कराये ॥५॥
व्यंजन शुद्ध परोसि थालमंह, श्री मुनि दान कराये ।
भक्ति भाव मुनि भोजन दीने, आनन्द-घन गरजाये ॥६॥
निरन्तराय भोजन मुनि कीने, देखि अनेकन भाये ।
दीपचन्द औ रूपचन्द मिलि, नरभव सफल कराये ॥७॥
सुमिरयौ मनमें हम बड़भागी, इम बहु पुन्य कमाये ।
बार २ संयोग मिलहु अस, "चन्द्र" सु विनय कराये ॥८॥
उन्निस और तिरासी जानो, संवत् शुभ दरसाये ।

द्वितिय चैत्रकी सुदी चतुर्थी, मंगल गान कराये ॥९॥
जै जै शब्द सबन मिलि उचरे, हर्षांकुर उगि आये।
नरक पशू गति अंधकार नशि, "चन्द्र" प्रकाश कराये ॥१०॥
पन्नालाल जैन "चन्द्र" टिकायतनगर निवासी।

स्तुति।

श्री लाला खुशरंगजी, लखनऊ निवासीकृत।

श्री गुरु ज्ञानके चन्दा, दरश अपना दिखा दीजे।
मेरा अज्ञान तम स्वामी, सभी जल्दी हटा दीजे॥
नग्न मुद्रा दिगम्बर हैं, न अम्बर पास है बिलकुल।
फकत पीछी कमंडल है, शबद अपना सुना दीजे॥
अट्ठाइश मूल गुणधारी, सभी जीवोंके हितकारी।
परीषह सह रहे भारी, मेरे संकट मिटा दीजै॥
निज-आतम ध्यान धरते हैं, किसीसे वह न डरते हैं।
सदा कर्मोंसे लड़ते हैं, करम मेरे खिपा दीजे॥
सभी विषयोंके हैं त्यागी, मुकत रमणीके अनुरागी।
न तुमसा कोई वैरागी, मेरे रागादि हर दीजै॥
मेरा है नाम संतूमल, और खुसरंग भी तखल्लुस है।
गुरूजी आसरा तेरा, मुझे शिवमग लगा दीजै॥

स्तुति-स्वरूपलालजी कानपुरकृत ।

श्री शांतिसागर मुन पधारे, लखनऊके बीचमें ।
उमड़ी है जनता दर्शनोंको, इस नगरके बीचमें ॥ टेक ॥
शांति मुद्रा देख उनकी, तृप्त हुए सभी नर ।
सुन अहिंसाका विषय, लीनी प्रतिज्ञा शक्तिभर ॥ २ ॥
दिलमें उमड़ी है सभीके, आपकी पूजन करैं ।
रचके दी पूजन जिन्होंने, उनका गुण गायन करैं ॥ ३ ॥
खबर है श्री मुनीन्द्रसागर, भी पधारेंगे यहां ।
दोनों मुन जन एक संग, होकर विहार करें यहां ॥ ४ ॥
धन्य साधूके दरस, और धन्य वो दानार हैं ।
ऐसे पंचमकालमें, तिस्टैं क्रिया अनुसार हैं ॥ ५ ॥
लखनऊके जैनियोंका, भी बड़ा सौभाग्य है ।
जिन बागमें बिचरें हैं, जिनके जैनमुन दो आज हैं ॥ ६ ॥
आए दो दिन भी न हुए, आ रहे यात्री बहुत ।
सेवामें आए "लाल" हैं, हर्षित हुआ है जी बहुत ॥ ७ ॥

(ग[illegible])

श्री शांतिसागर मुनीन्द्रसागर मुनी पधारे हैं आय करके ।
चलो सभी मिल नमोस्तु करने मिटायें दुःखोंको जाय करके ॥
बहुत दिनोंसे न दर्श पाये जिन्होंके दर्शण हैं आज पाये ।
चलो करें मिल धर्मकी चर्चा चारित्र अपना सम्हाल करके ।

पर्याय बदली हैं दम व दम हम कभी हो चिटी कभी हो मच्छर ।
जरा तो सोचो हे प्यारे भाई पापोंको छोडो इहार करके ॥
कुमति कुसौतनको छोड दो तुम सुमति सुहागिनको साथमें लो ।
करो परस्पर जो एकताको द्वेशकी अग्नि बुझाय करके ॥
अहिंसा व्रतका बयान सुनकर जरा तो आगे बढ़ो प्रेमकर ।
सम्हाल कर जरा तो घरकी ये "लाल" कहते सुझाय करके ॥

पद ।

आज हम रतनपुरीको आये । जन्मभूमि प्रभु धर्मनाथकी
देखत अति हर्षाये ॥ टेक ॥
सरयू सारिताके तट सोभि, युग मंदिर दर्शाये ।
एक गर्भ एक जन्म समयको, चिह्न लखत सुख पाये ॥आ०॥
जन्म कल्यानकके मंदिरमें, धर्मनाथ प्रभु पाये ।
दर्शण कर अति हर्ष हर्षकर, पदपंकज सिर नाये ॥ आज ॥
विक्रम सम्वत् अट्ठारहसौ, उनतालीस लखाये ।
युग मंदिरके शिलालेखपर, पढ़कर हम हुलिशाये ॥ आज ॥
वीराब्द चौवीसम्मौवाउन, द्वितीय चैत्रमें आये ।
शुक्ल पक्ष दिन शुक्र चौथ तिथि, वंदन अवसर पाये ॥आ०
श्री गुरु शांति मुनेन्द्र सिन्धु मुनि, तिन संग वंदन आये ।
"प्रेम" प्रभूके दर्शण पाकर, जन्म सुफल कर पाये ॥ आ० ॥

इ० प्रेमसागर ।

श्रीमान माननीय पण्डित

मदन मोहन मालवीय

सभापति इनडियन नेशनल कांग्रेस लाहौर

का

* जीवन चरित्र *

मूल्य -)

Printed by Pt. Janki Nath Shargha at the
Leader Press, Allahabad.



स्वर्गीय श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड़ ।

माननीय पं० मदनमोहन मालवीय ।

सभापति इंडियन नेशनल कांग्रेस ।

कौन सा मनुष्य ऐसा होगा जो यू० पी० (संयुक्त प्रान्त) के माननीय पं० मदनमोहन मालवीय को न जानता हो ? और कौन ऐसा होगा जो इस महान पुरुष के चरित्र सुनने का अभिलाषी न हो ? प्रत्येक की इच्छा होगी कि इस बुद्धिमान सर्व गुण निधान का जितना शीघ्र हो सके चरित सुने क्योंकि ऐसे देश हितैषियों के जीवन चरित्र बहुधा विचित्र हुआ करते हैं और लोग ऐसे चरित्र सुनने के बहुत उत्सुक होते हैं ॥

जन्म व कुल ।

आज हम जिस महान पुरुष का चरित्र अपने देशवासी हिन्दी भक्तों के सन्मुख उपस्थित करते हैं उनको गत दिसम्बर मास में लाहौर में जो चौबीसवीं इन्डियन नेशनल कांग्रेस हुई उसके सभापति होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । पंडित मदनमोहन मालवीय "मालवा" के एक प्रधान कट्टर ब्राह्मण कुल में से हैं । लगभग चारसौ वर्ष के हुये आपके पूर्व पुरुषों में से कोई इलाहाबाद में आये । इस कुल में बहुत से संस्कृत विद्याभ्यासी व पंडित पुरुष उत्पन्न हुए । पंडित ब्रजनाथ

इन महान पुरुष के पिता बहुत वृद्ध अवस्था में केवल वर्ष भर हुआ स्वर्गवास प्राप्त हुए। पूर्व (Late) महाराजा दरभंगा व बनारस पं० ब्रजनाथ जी का बहुत आदर व सन्मान किया करते थे यहां तक कि आपको गुरु समान समझा करते थे। यह पदवी कि उनको गुरु समान समझना केवल उनकी शुद्धताई व पण्डताई का फल था। पण्डित जी ने कई एक संस्कृत की पुस्तकें लिखीं जिनमें से एक को आपके पुत्र पं० मदनमोहन मालवीय ने आपके स्वर्ग पधारने से थोड़े दिन पहिले छपवाई। पं० ब्रजनाथ ने बहुत से पुत्री व पुत्र अपने पीछे छोड़े। आपने बड़े आत्मत्याग का कार्य्य यह किया कि धन की कमी होने पर भी अपने बालकों को विद्या अच्छे प्रकार की दी। हमारे माननीय अपने पिता के तृतीय पुत्र हैं। इन्होंने पच्चीस दिसम्बर सन १८६१ में अपने पिता के जन्म स्थान इलाहाबाद में जन्म पाया। आपको अपने पिता के पैतृक गृह से इतनी प्रीति व अनुराग है कि उसको एक क्षण के लिये भी छोड़ना नहीं चाहते। ऐसी अवस्था में जब २ इलाहाबाद में प्लेग हुआ यह कठिनता से थोड़े दिन के लिये बाहर चले गए और फिर गृह में आ गए॥

प्रथम अवस्था।

प्रथम ही प्रथम पं० मदनमोहन मालवीय को दो संस्कृत पाठशालाओं में शिक्षा मिली, इसके उपरान्त आप अंग्रेज़ी स्कूल में भेजे गए। इन्होंने एन्ट्रेन्स की परीक्षा इलाहाबाद ज़िला स्कूल से पास की। तदनन्तर म्योर सेन्ट्रल कालिज में भरती हुये॥

विद्यार्थी की अवस्था ही से आपने प्रजा सम्बन्धी विषयों में भाग लेना आरम्भ किया और धार्म्मिक प्रचार तथा शिक्षा प्रचार में विशेष भाग लेने लगे। आप आरम्भ से ही इस प्रकार के सोचवान व विचारवान थे कि "दिन दुगनी रात चौगनी" उन्नति कर गए, "इलाहाबाद लिटरेरी इन्सटीट्यूट" व "हिन्दू समाज" के जन्मदाताओं में आप भी हैं। लिटरेरी इन्सटीट्यूट में जो वादानुवाद हुआ करते थे उसमें आप बड़ी सरगर्मी से भाग लिया करते थे। आज तक जिस समय उनको वह प्रारम्भिक वर्ष अर्थात लिटरेरी इन्सटीट्यूट में व्याख्यान शक्ति बढ़ाना और वादानुवाद करना जो कि आजकल उनकी उन्नति व मान का कारण हो रहा है स्मरण आता है तो उनके शरीर में उत्साह सा उत्पन्न हो जाता है। मिस्टर हरीसन और डाक्टर थीबो के आप स्नेह पात्र शिष्य थे परन्तु मालवीय जी के हृदय में अपने अध्यापक महामहोपाध्याय पं० आदित्यराम जी का बड़ा स्नेह व सन्मान है यहां तक कि अब तक यदि कोई आवश्यक विचारणीय कार्य्य होता है तो उनकी मति लेते हैं। पं० मदनमोहन का वेग कुछ विशेष उत्तम न था। उन्होंने सन् १८७९ में कलकत्ता यूनिवरसिटी की एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर सन् ८१ में एफ़, ए, पास किया और ८४ में ग्रेजुएट हो गए, इसके सात वर्ष उपरांत एल, एल, बी. पास किया॥

अध्यापक।

धन कुछ यथेष्ट न होने के कारण पं० मदनमोहन माल-

वीय ने सन १८८४ में गवर्नमेंट हाईस्कूल में असिस्टेंट मास्टरी करली और सन ८७ तक पचास से पचत्तर रुपये तक मासिक पर काम करते रहे। बड़े हर्ष का विषय है कि हमारे प्रांत के प्रसिद्ध पुरुष डाक्टर सतीशचन्द्र बैनरजी आपके शिष्यों में से थे। मालवी जी सरकारी नौकर होने पर भी राजनैतिक सम्बन्धी विषयों में बराबर भाग लेते थे और सन् ८६ की कांग्रेस के समय में यद्यपि वह सरकारी कर्मचारी थे तौभी वे कांग्रेस में गये और वहां व्याख्यान भी दिया था॥

समाचार पत्र लेखक।

"हिन्दुस्तान" पत्र (जो कि प्रथम प्रकाशित हुआ करता था) के स्वामी (Proprietor) कालाकांकड के राजा रामपाल सिंह ने प० मदनमोहन मालवीय को उस पत्र का सम्पादक बनाना चाहा। श्रीयुत मालवीय जी ने यह सोचकर कि समाचार पत्र लिखना भी शिक्षा आदि से सम्बन्ध रखता है और उत्तम काम है सम्पादक होना स्वीकार कर ढाई वर्ष तक दो सौ रुपये मासिक पर काम किया। आपने इस बुद्धिमता व चातुरता से इस पत्र की उन्नति की कि आपकी प्रशंसा गवरन्मेंट एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट में छपी "हिन्दुस्तान" का सम्पादक पद छोड़ने उपरान्त आप इन्डियन यूनियन नामी पत्र के सम्पादक हो गए जो कि हमारे माननीय प० अयोध्यानाथ जी के प्रबन्ध से निकलता था। प० मदनमोहन मालवीय को पूरा भरोसा है कि समाचार पत्र के द्वारा ही सर्व सम्बन्धी विचार प्रगट करने में पूरी सहायता मिलती है और

इन्हीं के द्वारा हमारी सरकार हमारी इच्छायें सुन सकती है। यह सोचकर मालवीय जी ने तीन वर्ष हुये हिन्दी भाषा में एक पत्र (आप को अपनी मातृ भाषा से बहुत स्नेह है) "अभ्युदय" जारी कर दिया जो कि इस समय बड़ी उन्नति से चल रहा है। यहां तक कि अब अर्ध सप्ताहिक हो गया है और एक दैनिक अंग्रेज़ी पत्र "लीडर" भी आप के यत्न से निकल रहा है। जिस समय पं० मदन-मोहन "हिन्दुस्तान" का काम करते थे उस समय आप के बहुत से मित्रों ने सति दी कि आप वकालत पास करें। पं० मदन-मोहन वकील होना यथोचित नहीं समझते थे क्योंकि आपको धन उत्पन्न करने की कोई विशेष इच्छा न थी किन्तु धार्मिक शिक्षा वा शिक्षा इत्यादि को आप अपने जीवन का बड़ा भारी भाग समझते हैं। सब मित्रों के कहने पर आप ने वकालत पास की और सन ९१ में एल एल बी० परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ९३ में हाईकोर्ट में वकालत आरम्भ की॥

सर्व सम्बन्धी जीवन (Public life)

ऊपर के समाचार से विदित हुआ होगा कि पं० मदनमोहन मालवीय विद्यार्थी के समय में ही सर्व सम्बन्धी विषयों में भाग लिया करते थे। उन्हों ने "हिन्दूसमाज" स्थापित की। इसी प्रकार मालवीय जी ने अन्य विषयों में व धार्मिक काम में भाग लिया और बहुत से परोपकारी काम स्थापित किये॥

कांग्रेस ।

पं० मदनमोहन मालवीय ने द्वितीय कांग्रेस जो कि कलकत्ता में देश भक्त मिस्टर दादा भाई नौरोजी के सभापतित्व में हुई थी प्रवेश किया। वहां आपने जो और मनुष्यों को व्याख्यान देते हुए सुना तो आप के हृदय में भी भावना उत्पन्न हुई कि मैं भी इस योग्य बनूं। अतएव इन्हों ने अपने अध्यापक पं० आदित्याराम के ढाड़स देने से यह प्रथम ही बार था कि व्याख्यान दे डाला। इस व्याख्यान का असर लोगों पर बहुत उत्तम पड़ा, यहां तक कि मिस्टर ह्यूम ने आप के व्याख्यान की प्रशंसा अपनी कांग्रेस की रिपोर्ट में की। मालवीय जी का उन के उत्तम २ व्याख्यान देने व वादानुवाद करने से बहुत मान बढ़ गया, यहां तक कि सर चार्लस शिवन्लेट, मिस्टर केन, सर फीरोज़ शाह मेहता इत्यादि बड़े बड़े पुरुष इन का बहुत आदर करने लगे। सन ८७ की मद्रास कांग्रेस पर मिस्टर ह्यूम को भय था कि नार्थ वेस्ट प्रान्त (संयुक्त प्रान्त) के सब से कम डेलीगेट आवेंगे। इस बात ने मालवीय जी के हृदय को विदीर्ण कर दिया और आप कहने लगे क्या "हमारा प्रान्त" ही सब से पीछे रह जावेगा। यह सोचकर उन्होंने दौरा लगाना आरम्भ किया और (संयुक्त प्रांत) के ४५ डेलीगेट मद्रास कांग्रेस में गए. मालवीय जी सदा कांग्रेस की कमेटी में विराजमान हुआ करते हैं॥

कौंसिल के सभासद ।

पं० मदनमोहन मालवीय इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के सभासद बहुत दिन हुए चुने गये थे और एक दो बार वाइस

चेयरमैन भी रहे। ग्यारह वर्ष हुए जब आप प्रयाग विश्व विद्यालय (इलाहाबाद यूनिवरसिटी) के सभासद् चुने गए और पं० विशंभरनाथ जी के बाद लेजिसलेटिव कौंसल के मेंबर हो गए। बड़े हर्ष की बात है कि अब नये सुधारों के अनुसार जो इस प्रान्त की लेजिसलेटिव कौन्सिल बनाई गई है उसके आप सभासद् चुने गये हैं तथा इस प्रान्त के सर्कारी मेंबरों द्वारा आप वाइसराय के कौंसल के भी मेम्बर चुने गये हैं। आशा है कि आप वहां भी अपने देश के हित में बहुत कुछ जैसा कि सदा से करते आये हैं करेंगे॥

शिक्षा।

पं० मदनमोहन मालवीय विद्यार्थियों को लाभ पहुंचाने में हर समय तत्पर रहते हैं। इलाहाबाद में जो और प्रान्तों के विद्यार्थी पढ़ने आया करते थे उन को निवासस्थान अच्छा न मिलता था और और प्रकार का कष्ट हुआ करता था भला मालवीय जी इस कष्ट को कब सहन कर सकते थे। उन्हों ने माननीय पं० सुन्दरलाल से मिलकर इलाहाबाद में हिन्दू बोर्डिंगहाउस सर अनटूनी मेकडौनेल के नाम से बनवाया और विद्यार्थियों के वास्ते वहां पर ठीक इन्तज़ाम करवाया। पं० मदनमोहन अपने वृत्ते Profession की हानि करके यहां तक कि अपने पास से व्यय करके बड़ी बड़ी दूर से जाकर बोर्डिंगहाउस के लिये चन्दा इकट्ठाकर लाये और उनको सन्तोष होगा कि उनके परिश्रम का फल उनको इस समय मिल रहा है अर्थात विद्यार्थी बिना किसी कष्ट के

सुख पूर्वक बोर्डिंगहाउस में रहते हैं और मालवीय जी को इस कार्य्य के लिये धन्यवाद देते हैं। आप स्कूल कमेटी के सभासद भी रह चुके हैं। जिसके चेयरमेन लेट मिस्टर रौबर्ट थे। जो कुछ आपने कमेटी में काम किया वह सब पर प्रगट है॥

धार्म्मिक।

ऊपर लिख चुके हैं कि पं० मदनमोहन मालवीय को धार्म्मिक विषयों में बड़ा अनुराग है और धार्म्मिक उत्साह उनमें इस प्रकार विराजमान है गोया धर्म्म की ही मूर्ति हैं। उनको पूरा विश्वास है कि धार्म्मिक शिक्षा न होने से मनुष्य महत्व को प्राप्त नहीं हो सकता और इसके न होने से मनुष्य ऐसा ही अन शोभित मालूम होता है जैसे बिना अस्त्र शस्त्र क्षत्री और बिना पंगडताई ब्राह्मण। मालवीय जी स्वधर्म को इस उत्तम रीति से निवाहते हैं और स्वकर्तव्य को इस प्रकार अपना धर्म्म समझते हैं कि उसके प्रतिकूल बात करना वह पाप समझते हैं। पं० मदनमोहन मालवीय की इच्छा है कि स्कूलों तथा पाठशालाओं में धार्म्मिक शिक्षा दी जावे और उन्होंने स्कूलों के वास्ते धर्म पुस्तकें भी लिखी हैं। १९०६ में जो इलाहाबाद में सनातन धर्म्म सभा होती है उसके मूलोत्पादक अथवा जान प्राण मालवीय जी हैं॥

हिन्दू यूनीवर्सिटी का अनुसन्धान।

पं० मदनमोहन मालवीय की बहुत दिनों से यह इच्छा हो रही है कि बनारस में हिन्दू यूनीवर्सिटी स्थापित करें और उन्हें आशा है कि वह इस में कृतार्थ होंगे। मालवीय जी की यह

इच्छा सब पर प्रगट होगी कि वह साईन्टफ़िक, साईन्स, और हस्तकृत कार्य्य के साथ २ धार्म्मिक शिक्षा देना भी चाहते हैं और इसी को अपने देश की उन्नति की राह समझते हैं ॥

हस्तकृत कार्य्य या स्वदेशी गमन ।

लगभग तीस वर्ष के हुए जब से पं० मदनमोहन मालवीय हस्तकृत कार्य्यों में सहायता दे रहे हैं । सन् ८१ में एक देशी तिजारत कम्पनी इलाहाबाद में खुली थी उसके चलाने में आपने बड़ी सहायता दी । मालवीय जी स्वदेशी वस्तुओं के सेवन करने को धार्म्मिक कर्तव्य समझते हैं क्योंकि इसी के द्वारा वह अपने निर्धन भाइयों को लाभ पहुंचा सकते हैं । मालवीय जी उन मनुष्यों में से हैं जिनके उद्योग से इन्डियन इन्डसट्रियल एसोसियेशन १९०७ में इलाहाबाद में स्थापित हुई । पं० मदनमोहन मालवीय की यह इच्छा है कि बनारस में जो हिन्दु यूनीवार्सिटी स्थापित की जावे उसमें उच्च प्रकार की शिक्षा दी जावे और साथ २ धार्म्मिक शिक्षा भी दी जावे । १९०७ में जो सरजान ह्यूव ने नैनीताल में इन्डस्ट्रियल कान्फरेन्स इकट्ठी की थी उसके सभासद आप ही थे और प्रयाग शुगर कम्पनी लिमिटेड के भी जन्मदाताओं में आप हैं ॥

सर्व जन प्रिय ।

पं० मदन मोहन मालवीय इस प्रकार के दयावान व दानवान पुरुष हैं कि कंगालों और निर्धनों को देखकर दया आना तो

उन का स्वाभाविक धर्म हैं। जिस समय इलाहाबाद में प्लेग का दौरा था तो मिस्टर फ़रर्ड सी० आई० ई० कलक्टर ने प० मदन मोहन से सहायता मांगी। मालवीय जी ने हर्ष से इस बात को स्वीकार किया और जहां तक वस चला अपने निर्धन देशी भाइयों की सहायता की। जिस जिस स्थानों में प्लेग होता मालवीय जी स्वयं जाकर वह स्थान शुद्ध पवित्र करवाया करते थे और कलक्टर को मति दी कि लोगों के वास्ते मोहबतिया बाग़ में झोंपड़ियां डलवा दें। आप सुबह: सांझ झोंपड़ियों में स्वयं जाकर लोगों को देखा करते थे कि कहीं उन को कष्ट न हो॥

गुण।

पं० मदनमोहन मालवीय को यदि ग़ौर से देखा जावे तो इस पुरुष में सिर से पैर तक दया ही दया है। इस पुरुष के हृदय में प्रीति व परोपकार का समुद्र ऐसा वह रहा है कि इस को अपने लाभ का कदाचित चितवन भी नहीं करने देता। आप अपनी मति पर इस प्रकार दृढ़ रहते हैं कि कोई आप के हृदय से किसी प्रकार का विचार उठा नहीं सकता है। पर उपकार, बड़ों का सन्मान करना, कंगालों निर्धनों को देख दया आना, अपने देश वासियों की उन्नति सोचना तो आप का स्वाभाविक धर्म्म है। आप को अपने भारतवर्ष और धार्म्मिक मत पर इस प्रकार गर्व है कि इसके तुल्य और किसी को नहीं समझते हैं। आप मित्रों से सदा मित्रता रखते हैं और शत्रुओं को सदा क्षमा करते हैं। आप

राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेना भी अपने धार्म्मिक प्रथा का भाग समझते हैं क्योंकि उनके विचार में इससे धार्म्मिक व देश की दशा सुधरती है और आशावान रहना तो आपका स्वभाव है ॥

यदि ऐसे महान पुरुष को स्त्री जाति के दुर्दशा पर दया न आवे तो आश्चर्य्य हो, मालवीय जी जब कालिज में थे, जब स्त्रियों को शिक्षा देना ओछापन समझा जाता था, तभी से वह स्त्री शिक्षा के प्रबल सहायक हैं और उसका प्रत्यक्ष फल यह है कि प्रयाग में एक गौरी पाठशाला आज चार पांच वर्ष से स्थापित है जिस में ऊंचे घराने की सैकड़ों ऐसी कन्याओं को शिक्षा मिलती है जिनके माता पिता उन्हे घर से बाहर भेजना अपनी मर्य्यादा के विपरीत समझते थे। अन्त में हमारी उन से यह प्रार्थना है कि आप अपना थोड़ासा समय हम अबलाओं की दशा सुधारने में देवें कारण कि समाज के जिन सुधारों को साधारण मनुष्य वर्षों में कर पाते हैं उसे आप ऐसे मनुष्य बात की बात में कर सक्ते हैं। क्या मालवीय जी हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार न करेंगे? क्या जो मदनमोहन द्रौपदी की पुकार सुनकर आतुर होकर दौड़ते हुए हस्तिनापुर आये थे उसी के दृढ़ भक्त मदन मोहन हम अबलाओं की पुकार पर ध्यान न देंगे?

जिस महान पुरुष के जीवन चरित का वृत्तान्त ऊपर दिया है उनके लिये हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि परमात्मा उनको सब कष्टों से बचा रक्खे और भविष्यत आयु आपकी अच्छी स्वास्थ्य व निर्विघ्नता से कटे। ऐसा महान पुरुष हमको मिलना दुर्लभ है। हमें भारत के भाग्य से निराश न होना चाहिये क्योंकि भारत माता में अभी इतनी शक्ति शेष है कि वह ऐसे २ पुत्रों को उत्पन्न करे, जो गिरे पड़े भारतवासियों को इस योग्य बनावें कि वे अपने जननी के कलंक के टीके को मिटाकर उसे उन्नति के उस शिखर पर पहुंचावें जहां इस समय पृथ्वी के अन्य २ देश विराजमान हैं॥

समाचार पत्रों की सम्मतियां।

"अभ्युदय" लिखता है :—हम बहुत हर्ष से इस पत्र का स्वागत करते हैं और सब पढ़ी लिखी स्त्रियों को इसको मँगाकर पढ़ने को सलाह देते हैं।

"श्री वेङ्कटेश्वर" समाचार पत्र लिखता है:—कन्याओं और महिलाओं के लिये यह पत्र अत्युत्तम और उपयोगी है। हम बड़े आदर से इसका स्वागत करते हैं। समस्त शिक्षित घरानों में इसको जगह मिलनी चाहिये। हमारा ख्याल है कि यदि यह पत्र चलता रहा तो स्त्री शिक्षा को बहुत बड़ी उन्नति होगी।

और समाचार पत्र पानियर, एडवोकेट, आमूंब गज़ट, इत्यादि इसी प्रकार लिखते हैं।

ॐ सत्यस्वरूपाय नमः।

यह पुस्तक

दिगम्बर मुद्रा मंडन

पक्षपात रहित

ज्ञानी सत्पुरुषों के संशय तिमिर के नाशके वास्ते

इन्द्रप्रस्थ निवासी—पण्डित शिवचन्द्र ने बनाई

जोकि दिगंबर मत को अनादि सिद्ध करता है।

देहली—कैसरहिंद प्रेस में लाला देवीसहाय के छपी

॥ ओं सत्य स्वरूपाय नमः ॥



ॐ सत् स्वरूपाय नमः ।

॥ अनादि दिगम्बराय श्री मद्दाम्नाय नमः ॥

प्रगट होकि जैनमत में दो शाखा विशेष विख्यात हैं. दिगंबर १ श्वेताम्बर २ उसीसे दिगंबरी १ श्वेतांबरी २ जैनी भी दो तरह के समझे जातेहैं, और उनमें भी स्वयं कल्पित मनोनुकूल बहोत भेद हैं. परंतु यहां फकत इस बातका निर्णय हम लिखते हैं कि दिगंबराम्नाय अनादि हैं या सादि. क्योंकि दिगंबरी महात्मा कहतेहैं कि दिगंबराम्नाय अनादि है. और श्वेतांबरी कहते हैं कि श्वेतांबराम्नाय अनादि हैं. इसका संदेह निवर्त्तन करने के वास्ते श्वेतांबराम्नाय के शास्त्र सें किंवा युक्ति सें हम लिखते हैं. जिससे सब लोगों को बोध हो। और इस पुस्तक में उसीका निर्णय करा जायगा इसको ज्ञाता ॥३॥ जन पक्षपात को छोड़ सत्यासत्य का निर्णय कर यथार्थ स्वीकार

करैं। उक्तंहि-आत्माराम संवेगी कृत अज्ञान तिमिर भास्करे गाथा

छत्तीसवाससये विक्कमनिवस्स मरणपत्तस्स सोरठेवल्लहियेसे यव इसंघसमुपन्नो। १। इति श्वेतांबर मतोत्पत्तिकाल। पुनः तत्रैव ग्रंथे, नवाधिकैः शतैषड्भिः अब्दानां वीरतोगतैः मइत्त्सर्वं विसंवादात् सोष्टमोंबोटिको भवत्। १। इति श्वेतांबराम्नाये दिगंबरोत्पत्तिकाल। यही व्याख्यान अनादि सादि का मूल उन्होंने लिखा है. इनमें जानना चाहिये कि किसका वचन सत्य और किस का असत्य है यह इस पुस्तक के पढ़ने से निर्णय होगा तद कोई बाद न करैगा. आत्मारामजी अज्ञान तिमिरभास्कर के दूसरे खंड में पृष्ट १० में लिखते हैं, कि दिगंबर मत विक्रम राजा के ६०९ छसे नव वर्ष के पीछे हुवा पहले अनादि में श्वेतांबर मत ही था. और दिगंबराचार्य्य लिखते हैं कि विक्रमाब्द के १३६ एकसो छत्तीस वर्ष के बाद श्वेताम्बर मत हुवा इसमें सत्यवक्ता किसको समझना

चाहिये और अज्ञा० ति० भा० द्वितीय खंड में पृष्ट ३८ में लिखाहै कि रथवीरपुर के राजा का शिवभूति नामक बड़ा योधा था वह राजा को अति प्रिय था. एक दिन शिवभूति अपनी स्त्री से क्रोधित होकर राजा की आज्ञा के विना श्रीकृष्ण सूरी के पास जा दीक्षा स्वीकार कर देशांतर में फिरनेलगा कालांतर में विचरता गुरु के साथ उसी नगर में आया जहां कि पहले रहता था. जद राजा ने सुना कि शिवभूति साधु आये हैं तद उनकों बुलाके दर्शन करा और एक बहु मूल्य वस्त्र (रतकंबल) उनको भेट करा उनोंने लेजा अपने गुरु कों दिखलाया गुरुनें कहा कि साधुको ऐसा वस्त्र रखना योग्य नही किंतु अब तुम ओढ़ो परंतु शिवभूति ने उसको ओढ़ा नही बांधके रखदिया. जद कभी अकेला होता तद उसकों खोल कर देख प्रसन्न होता इसीतरह एक रोज अकस्मात् गुरु ने उसको देखा तद उनोंने विचारा कि इसकों इस रतनकंबल से स्नेह है तद

गुरुनें इस कार्य्य को अयोग्य समझ शिवभूति के बिना पूछे उसके टुकड़े २ कर और साधुवों को पैर पूंछने को बाँटदिये तब उसने अपने रत्नकंबल के खंड देखे तब मनमें क्रोधित हुवा परंतु गुरु से विवश हो चुप रहा. एक रोज उसके गुरु जिनकल्प का वर्णन कर तेथे कि जिनकल्पी मुनि आठ प्रकार के होते हैं उनमें उत्कृष्ट जिनकल्पी के दो उपकरण होतेहैं रजोहरण १ मुखवस्त्रिका २ तब शिवभूति साधु सुनकर बोला कि आप जिनकल्पी का मार्ग क्यों नहीं पालते. तब गुरुने कहा कि श्रीजंबू स्वामी के निर्वाण पीछे भरतखंड में १० बोल का व्यवछेद होगया इसवास्ते पंचमकाल में जिनकल्पी का मार्ग नहीं सधता. वह १० बोल यथा-ख्यात चारित्र १ सूक्ष्मसांपराय चारित्र २ परिहार विशुद्ध चारित्र ३ परमावधि ४ मनःपर्य्ययज्ञान ५ केवलज्ञान ६ जिनकल्प ७ पुलाकलब्धि ८ आहार कलब्धि ९ मुक्तिका लाभ १० यह पंचम कालमें नहीं होते. ॥६॥

यह सुन शिवभूति ने कहा कि आप कायर हो मैं जिनकल्प पालूं
७॥ गा. उसीवक्त सर्व वस्त्र छोड़ नग्न होगया. तद से दिगम्बर मत शुरू
हुवा इसी से श्वेतांबरी कहते हैं कि महावीर के मुक्ति के बाद ६०९
वर्ष पीछू दिगंबर मत चला. आत्मारामजी ने यह कथा अपने शास्त्र
के अनुकूल लिखी परंतु इसको अच्छीतरें विचारा नहीं कि इसीसे
अनादि दिगंबर सिद्ध होता है वही लिखते हैं. उपरोक्त श्लोक के
चतुर्थ पाद में लिखा है (सोष्टमों बोटिको भवत्) अर्थ-वह शिवभू-
ति आठवां बोटिक हुवा अर्थात् आज्ञा लोपक इससे यह निश्चय
नहीं होता कि दिगंबरी उसी वक्त से हुये. और पहले नथे इस से
यह प्रतीत होता है कि वह बोटिक हुवा जोकि तीर्थंकर के बचन
में संदेह करै वह बोटिक या निह्नव समझा जाता है. शिवभूति ने
अपने गुरु मार्ग के अनुकूल यह नहीं समझा कि इस काल में जिन ॥७॥
कल्प का विच्छेद और श्वेतांबर मत का अस्तित्व है स्वयं दिगंबर

हुवा. तथास्तु अब समझना योग्य है कि उपरोक्त लेखसे ही यह निश्चय होता है कि पहले दिगंबरी थे पुन: नवीन श्वेतांबर भेष को छोड के गुरुकी आज्ञा न मान कर शिवभूति दिगंबरी हुवा. इसी से इनके वेषके अनुकूल वह आठवां निह्नव यथार्थ समझा गया लेकिन दिगंबर मत के अनुकूल न हुवा १ और आत्माराम जी स्वयं लिखते हैं कि उत्तम जिनकल्पी को २ उपकरण होते हैं. एक रजोहर दूसरा मुखवस्त्र तद धोती, चादर पात्रणीपात्र, यष्टी आदि अन्य कोई परिग्रहन समझा इससे भी दिगम्बर मुद्रा अनादि सिद्ध होती है २ और जोंकि जंबूस्वामी के पीछे भरतखंड में १० बोलका विच्छेद हुवा वह भी अनादि ही थे उन्ही के अंतर्गत जिनकल्पी दिगंबर मार्ग भी अनादि सिद्ध हुवा. तद आत्माराम जी किसतरह मादि लिखते हैं ३ और २४ तीर्थंकर का भी उत्तम अनादि जिनकल्पी दिगंबर वेश था उसको किस रीति से नवीन स्वयं कल्पना से

लिखते हैं ४ और आत्मारास जी स्वयं लिखते हैं और अन्य सूत्रों से भी निश्चय है कि पंचमकाल में जिनकल्प का विच्छेद होगा परंतु जो पदार्थ पहले होगी तद उसका विच्छेद भी होगा इसमें भी प्रथम दिगंबर मुद्रा थी पश्चात् विच्छेद हुवा ५ और जिनकल्प मार्ग का विच्छेद भरत ऐरावत क्षेत्र में हुवा किंतु विदेह क्षेत्र में तो यथार्थ १० बोल वर्त्तमान हैं इसमें भी दिगंबराम्नाय अनादि सिद्ध होती है ६ क्योंकि अस्ति नास्तिका अनादि संबंध समझो जिस वस्तु का सद्भाव है उसी का अभाव होगा और भी जानना चाहिये कि यह दिगंबर वेष अनादि अकृतृम निर्विकार निर्भय स्वाधीन है. देखो माता के गर्भसे पुत्र उत्पन्न होता है उस समय निर्विकार निराभरण निश्चिंत निष्परिगृही होता है पश्चात्वस्त्र पहिनाये जाते हैं इसमें भी वीतराग मुद्रा ही प्रशंसा योग्य निर्भय समझो ७ संसार में वस्त्रधारी अनेक मत हैं। शैवी, वैष्णवी, लिंगायती, बौद्ध, मीमांसक, नैयायिक, सां-

छय. पातञ्जली, शून्यवादी, ईश्वरवादी, नास्तिक, आस्तिकमती, दा-
दूपंथी, नानकपंथी, श्वेतांबरी, जैनी दिगंबरी, ढूंढिये, गुमानपंथी,
तेरापंथी, मुहाम्नाथी, रामाश्रमी, चक्रांकित, कबीरपंथी, रैदासमार्गी,
कूंडापंथी, वाममार्गी, दक्षिणमार्गी, अग्न्युपासक, सूर्य्योपासक, आ-
र्य्यसमाजी, ईसाई, यवन, इत्यादि अनेक मतावलंबी मनुष्य अपने २
धर्म्म को अनादि समझते हैं और इस समय में कोई प्रत्यक्ष ज्ञानी
ऐसा है नहीं जोकि इसका निर्णय करै कि यह धर्म्म अनादि यह
सादि है. लेकिन शास्त्र द्वारा होसक्ता है यदि पक्षपात छोड़कर करा
जाय. तह धर्म्म का मूलदिया है वह जिस धर्म में जिस मुद्रा में
पूर्ण हो उसी मुद्रा को ध्यान की सिद्धि और मुक्ति के वास्ते उत्तम
समझा वह सिवा दिगंबर मुद्रा के और किसी वेष से नहीं होसक्ती
और जोकि श्वेतांबरी १० बोल का विछेद कलिकाल में लिखते हैं ॥१०
उसको दिगंबराचार्य्य भी स्वीकार करतेहैं. परंतु दिगंबरी उक्त वि-

छेद को नास्ति या सादि नहीं कहते क्योंकि चिंतामणि का इस
काल में अलाभ है, परंतु अन्य किसी समय में अवश्य था. तद्‌ आ-
गामी किसी कालमें भी होगा। आगे श्वेतांबरी शास्त्र से आदि दि-
गंबर सिद्ध करतेहैं–उक्तंच. कल्प सूत्रे पत्र ८१ सूत्रं, तदाणं सम
णे भगवं महावीरे संवच्छरसाहियं मास चीवरधारीहोत्था तेणपरं
अचेलगी पाणिपडिग्गहए. अर्थ–ततः परं भगवान महावीरः श्रम-
णः १३ मासं यावत् देवदूष्य वस्त्रधारी आसीत् तेनपरं वस्त्ररहि
तः पाणिपात्रश्च बभूवपरं। उनकी यह अतिशय उत्तम समझो कि
तीर्थंकर नग्न हैं किंतु प्रजा को नग्न मालूम नहीं होते. पुनः तत्रैव
पत्र १४० स्वामी चैत्रवदी ८ उत्तराषाढे दीक्षागृहीता तदेंद्रेणएकं
देवदूष्यवस्त्रं भगवतः स्कंधोपरि समर्पितं भगवान् अनगारोजातः
इति. इससे भी मालूम होताहै कि दिगंबर मत अनादि है यदि अ- ॥११॥
नादि नथा तब तीर्थंकर क्यों नग्नहुये. यदि कहोगे एक देव दूष्य

वस्त्र उनके कांधेपर था. तथास्तु उस जगह वस्त्र रखने से नग्नता दूर नहीं होती और श्वेतांबराचार्य्य स्वत: लिखते हैं कि भगवान नग्न थे और जिनकल्पी के कोई वस्त्र भी नहीं होता. यदि कहोगे कि तीर्थंकर अतिशय से नग्न नहीं मालूम होते यह सत्य है परंतु श्वेतांबरी तो नथे. और जोकि ऋषभदेव के साथ कच्छादि ४००० राजा मुनि हुयेथे वहतो नग्न मालूम होतेथे; क्योंकि उनके कोई अतिशय नथी. और जिस समय तीर्थंकरोंने वस्त्र छोड़ा उस अवसर इंद्रने फकत भगवान के कंधपर वस्त्र रख्या परंतु शेष मुनिराज जो जिनकल्पी हुये थे वह दिगम्बर ही रहे. इससे भी दिगंबराम्नाय अनादि समझी जायगी ८ इस व्याख्यान के लिखने से हमारा प्रयोजन दिगम्बराम्नाय के अनादि सिद्ध करनेका है कि यह जिनकल्पी मुद्रा श्वेतांबरोक्त शास्त्रसे भी अनादि तीर्थंकर गृहीत है इसको सादि कहना योग्य नहीं. हम नहीं जानते कि इस कालके महात्मा किस

रीति से दिगम्बराम्नाय की उत्पत्ति शिवभूति बोटिक से ही लिखते हैं जिसको श्री ऋषभदेव ने स्वीकार करा और औरों को उपदेश
३॥ दिया. उपरोक्त १० प्रमाण से दिगम्बराम्नाय अनादि सिद्ध करीगई। अब श्वेतांबरी महाशयों को योग्य है कि वह भी अपनी युक्ति से और दिगम्बरी शास्त्र से तीर्थंकर गृहीत श्वेतांबराम्नाय सिद्ध करें और पक्षपात को छोड़ें और इस आशय को भी त्यागकरें कि दिगम्बरियोंने भी श्वेतांबर मत को सादि लिखा है. इसी से हम भी ऐसा लिखते हैं, तथास्तु उसको शास्त्र द्वारा पूर्ण करना योग्य है. दिगम्बराचार्य्य कृत जो हो कि अमुक शास्त्र में अमुक तीर्थंकर को श्वेत वस्त्रधारी लिखा है. तथा अमुक जिनकल्पी साधु श्वेत या रंगीन तथा मलिन वस्त्रधारी था इससे श्वेतांबर मत भी अनादि है, तद दिगंबरी स्वतः चुप होके बैठजाते. और भी समझना योग्य है कि ॥१३
शास्त्र में सर्वज्ञ की आज्ञा है कि एकाग्र चिंता को रोकके मुक्ति के

निमित्त ध्यान करना चाहिये वही लिखते हैं. पद्मचरित्र पर्व्व ११ में
ध्येयमेकाग्र चित्तेन सर्व्वग्रन्थ विवर्जिता । मुनिना ध्यायते तत्त्वं
मारंभेन भवद्विषे: ३५ प्राणिनो ग्रंथसंगेन रागद्वेष समुद्भव । रा
गात्संजायतेकामो द्वेषाज्जंतु विनाशनम् ३६ कामक्रोधाभि भूतस्य
मोहेना क्रम्यतेमन: । कृत्याकृत्येषुमूढ़स्य मतिर्नस्याद्विवेकिनी ३७
जोकि श्वेतांबराचार्य्य लिखते हैं कि पंचमकाल में भरतखंड में १०
बोलका विछेद है. यह सत्य है परंतु चतुर्थकाल मे १० बोल वर्त्तमा-
न थे. तद मुक्ति का लाभ होता था वह ध्यान से समझो, तद इस
समय न होनेसे मुक्ति मार्ग सादि न समझा जायगा जैसा कि दश
बोल अनादि हैं तद्वत् दिगम्बराम्नाय जिनकल्प मार्ग उनके अंतरगत
होने में अनादि समझो इसके बिना ध्यान की सिद्धि नहीं ध्यानके
बिना मोक्ष न होगा वही उपरोक्त ३ श्लोक में कहा है. संपूर्ण परि- ॥१४॥
ग्रह छोड़के एकाग्र चित्तसे मुनिराज को ध्यान करना योग्य है नकि

परिगृही आपके समान ध्यानी होसकता है १ क्योंकि परिगृह संयोग में प्राणी का राग द्वेष होगा. राग से काम द्वेष से प्राणी का घात इससे दया की हानी होगी २ क्योंकि कामी क्रोधी मनुष्य का मान मोही होगा और मोही मनुष्य कृत्याकृत्य के विषे मूर्ख होगा तब ज्ञान का नाश जब ज्ञान का नाश हुवा तब मुक्ति का लाभ न होगा. इसीवास्ते दिगम्बर मुद्राही अनादि श्रेयस्करी सिद्ध है यही सर्वज्ञादरणीय शुभ है।

॥ इति ॥

इस पुस्तक को बिना हमारी आज्ञा कोई न छापना.

—※—

(आषाढ़ कृष्णा ५ रविवार, संवत् १९५० विक्रम)



अथ चरणदासकृत

स्वरोदयसार प्रारंभ ।



॥ श्रीमत निम्बार्काय नमः ॥

अथ चरणदासकृतस्वरोदय ।

प्रगट हो कि, स्वरोदय (सरोधा,) ऐसी विद्या है जिसके द्वारा गुप्त मनोरथ प्रगट हो सक्ते हैं और विद्याके जाननेमें लोगोंको बड़े लाभ होते हैं. इस लिये अगले ग्रंथोंसे जिन बातोंका जानना और जिन साधनोंका साधन अवश्यक है इनको चुन चुनके यह छोटासा ग्रंथ लोगोंके हितके लिये हमने बनाया है. जो लोक इस विद्यामें निपुण हैं उनसे मेरी यह प्रार्थना है. कि इस ग्रंथमें जहां कहीं भूल चूक देखें उसको अपनी दयालुतासे शुद्ध कर देवेंगे. जानना चाहिये कि इस विद्याके सीखनेमें प्रथम तत्वोंको पहिचानना है.

इसलिये ये यंत्र लिखते हैं.

१	२	३	४	५	६	७	८	९				
तत्वका नाम.	तत्वका रंग.	तत्वकी चालका प्रमाण.	तत्वकी चाहना.	तत्वकी प्रकृति.	तत्वका स्थान.	तत्वका दरवाजा.	तत्वका भोजन.	एक २ तत्वमें ५ तत्व भुगते हैं और उनकी प्रकृति के न्यारे २ भेद.				
								आकाश	वायु	तेज	जल	पृथ्वी
आकाश.	काला.	नासिकाके भीतर रहताहै बाहर नहीं आता.	बुरे स्वाद को चाहै.	स्थिर.	सिरमें रहता है.	दोनों कानमें	शब्द.	दुःख	सुख	लाज	लोभ	भय.
वायु.	हरा.	टेढा होके आठ अंगुल नासिकाके बाहर आता है.	खट्टी वस्तु को	चर.	नाम	दोनों नासिकामें.	सूंघना.	बात करना.	हिलना.	दौडना.	बढना.	सिमटना.

अग्नि	लाल.	ऊंचा होके नासिकामें ४ अंगुष्ठ बाहर आता है.	तीखी वस्तु को	नम	पिता	दोनों नेत्रों से	देखना.	नींद	अंग डाई	मुख	प्यास.	आलस.
जल	सफेद.	नीचे होके नासिकासे १६ अंगुष्ठ बाहर आता है.	सलौना वस्तुपर	सानला	मगज	लिंग	मैथुन	पित्त	बिंद अर्थात् जल	लोहू	पसीना.	थूक
पृथ्वी	पीला	सामने नासिकासे १२ अंगुष्ठ बाहर आता है.	मीठी वस्तु को चाहे.	कांठन.	नाम के उपर.	मुख	भोजन.	रोम	सांस	नस	चाम	हाड.

इस यंत्रके देखनेसे बुद्धिमान् मनुष्य एकएक तत्वको सहजही पहिचान सक्ते हैं. उदाहरण इस यंत्रके तीसरे चौथे कोठेमें देखो. और विचारो कि जिस समय तत्व ४ अंगुष्ठ नासिकासे बाहर निकसता है और तीखी वस्तुपर चित्त चलता है तौ अग्नितत्व होगा. और उस तत्वमें नव कोठेके विचारसे जो अंगड़ाई आती है सो पवनतत्व है और प्यास लगती है तौ जलतत्व जानना चाहिये. ऐसे ही सब तत्वोंका विचार बुद्धिके द्वारा हो सक्ता है परंतु कुंजी गुरुके हाथ है.

दूसरा प्रकार तत्वकी सूरत देखनेका.

मनुष्यको चाहिये कि, जब एक प्रहर रात्रि बाकी रहै तब सिंह आसन बैठ अर्थात दोनों गोडोंको पृथ्वीपर जमाके पावोंको चूतड़ोंके तले राखे और सीधा बैठके दोनों हाथोंके पंजोंको उलटके गोडोंपर



राखे इस प्रकारसे कि अंगुलियोंके सिर पेटकी तरफ रहे. फिर दोनों नाकके नथनोंके सिरपर दृष्टि बांधके आते जाते तत्वोंको देखो तौ मुहूर्त तक ऐसे करते २ छः महिनेमें ज्योंके त्यों तत्व दीख पड़ें.

अब हानिलाभके विचारनेका भेद लिखते हैं.

जानना चाहिये कि स्वरोंके तीन भेद हैं. इडा, पिंगला, सुषुम्ना और तिथि वार राश्यादिक एकएकके संग न्यारे न्यारे हैं. उनके जाननेके लिये चार कोठेका यंत्र लिखा जाता है. पहिले कोठेमें स्वर पक्षवारादिकके नाम बताये हैं. दूसरा कोठा पिंगलाका है. उसके संगतियोंका ब्यौरा लिखा है. इससेही तीसरा चौथा कोठा इडा और सुषुम्नाका है

उनके संगाती उनके नीचेके घरोंमें इस यंत्रके विचारसे प्रगट है.

स्वरादिकके नाम.	पिंगलाके संगातियोंके नाम इस कोठेके घरोंमें	इडाके संगतियोंका नाम इस कोठेके घरोंमें.	सुषमनाका भेद.
स्वरोंके नाम.	पिंगला और सूर्य दाहिने स्वरका नाम है और तासीर गरम है.	इडा और चंद्रमा बांये स्वरका नाम है. तासीर सरद है.	दोनों स्वर चले. सु०
देवतानाम	शिव.	ब्रह्मा.	विष्णु.
पक्षोंके नाम.	कृष्णपक्ष १५ दिनमें ९ सूर्य ६ दिन चांदके मनुष्यकी देहमें अपना २ राज करते हैं. ॥ सूर्यके दिनमान ४।५।६।१०। ११ चंद्रमाके दिनमान १। २।३।७।८।९।१२।१३।१४ अमावस.	शुक्लपक्ष १५ दिनमें ६ सूर्य ९. दिन चांदके मनुष्यकी देह अपना २ राज करते हैं. चंद्रमाके दिनमान १।२।३।७।८।९।१२।१३।१४ सूर्यके दिनमान ४।५।६।१०।११ पून्यो.	•

चौघडियां राजसोचंद्रमाका.	कृष्णपक्षके सूर्यके प्रकाश होतेही पहली ४ घडीमें सूर्यका अमल दूसरी ४ घडीमें चांदका अमल फिर सूर्य फिर चांदका अमल रहता है.			शुक्लपक्षमें रात्रिके समय पहली ४ घडीमें चांदका अमल दूसरी ४ घडीमें सूर्यका अमल फिर चांद फिर सूर्यका अमल रहता है.		
वारोंके नाम.	शनि	रवि	मंगल	सो.	बु.	बृ. शु
दिशाके नाम.	पूर्व		उत्तर	दक्षिण		पश्चिम
तत्वोंके नाम.	अग्नि		पवन	जल	पृथ्वी	आकाश
ओड.	पीछे		नीचे	आगे	ऊंचे	बांये
प्रश्नके अक्षर.	ऊरे जैसे:	१ २	५	०	०	०
राशियोंके नाम.	मेष. कर्क.	तुला.	मकर	वृ. मि.	वृ. कुंभ,	सि. क. मी. ध

चौघडियांविचार बारहराशिओंका जोरातदिनका ६० घडीमें भुगते हैं.

राशिनाम.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
राशिरंग.	लाल.	सफेद	हरा	पीला	धूआ	पुष्प	पुष्पगेह	काले	सुनह	पीला	विर्क्षी	न्योला
घड़ी.	३	४	५	५	५	५	५.	५	५	५	४	३
पल.	३८	११	३	४७	४३	३८	३८	४३	४७	३	११	३८

अब प्रश्न उत्तरी की सूक्ष्मरीति लिखते हैं. मनुष्योंको चाहिये कि बहुधा ये चार कोठेके यंत्रको जिसने चार स्वरोंके चार भेद किये हैं अच्छी भांति समझलेवै.

स्वरोंके नाम और गुण.

निर्गुण जो स्वर बाहर आवे जो प्रश्न करे ताको कार्य इन स्वरनमें सिद्ध नहीं होय.	सगुण जो स्वर भीतर जाय प्रश्न जो प्रश्न करे या स्वरमें सो अपनी आशा पावे.	उदय	अस्त
		जो स्वर बांई ओर दाहिनी ओरको फिरे.	जो स्वर दाहिनी ओर बांई ओरको फिरे.

गर्भवं-
तीके पुत्र
होगा कि
पुत्री उस
का विचार
लिखते हैं.

पांच प्रकारके प्रश्नोंके उत्तर देनेकी रीत.

उत्तर देनेकी यह रीत है कि प्रश्न करनेके समय देखे कि जो पृच्छक अर्थात प्रश्न करनेवाला और वक्ता अर्थात उत्तर देनेवाला इन दोनोंके दाहिने स्वर हों तो बेटा होवेगा. अरु भाग्यवान् और उसकी बडी ऊमर होवेगी. और जो दोनोंके बांए स्वर होंय तो बेटी भाग्यवती बड़ी ऊमरकी पैदा होय. और जो पृच्छकका बायां और वक्ताका दाहिना स्वर होय तो बेटा पैदा होयके मरजाय और जो पृच्छकका दायां और वक्ताका बायां स्वर होय तो बेटी पैदा होयके मर जाय और जो दोनोंके सुषुम्ना स्वर हों तो जोडेल दो बेटे पैदा होंय. और आकाशतत्वमें प्रश्न करे तो गर्भ जाता रहे या हींजडा पैदा होय.

प्रश्न.

उत्तर देनेकी रीति.

जो पृच्छक बांई ओर बैठके प्रश्न करे तो और वक्ताका स्वर दाहिना होय तो बेटा पैदा होय. उसकी माता मर जाय. जो जल पृथ्वीके तत्वमें प्रश्न करे तो बेटी पैदा होय. अग्नितत्वमें प्रश्न करे तो स्त्रीका पेट गिरजाय.

स्त्रीगर्भसे है वा नहीं

पृच्छक जो चलते स्वरकी ओरसे प्रश्न करे तो स्त्रीगर्भसे नहीं है. और जो बंदस्वरकी तरफसे प्रश्न करे तो गर्भसे है.

प्रदेशसे फलाना कब आवे.

प्रश्न करनेके समय पृच्छक और वक्ताके जो दाहिने स्वर हों तो प्रदेशी बहुत जलदी आवे. जो दोनोंके बाँए स्वर हों तो प्रदेशी देरसे आवे; जो एकका बांया और एकका दायां हो तो प्रदेशी अभी नहीं आवेगा.

प्रदेश अथवा और कहीं जानेसे आशा पूरण होय या नहीं

प्रश्न करनेके समय जो पृच्छक और वक्ता दोनोंके एकही स्वर हों तो दाहिना अथवा बांया और दिनराश प्रश्नके अक्षर पृच्छकके बैठनेकी और वाह स्वरके संगाती है तो मनकी आशा भली भांति पूरण होय. जो राश्यादिकमें कुछ स्वरके संगाती कछु दूसरे स्वरके संगाति हो तो ढीलमें आशा पूरण होयगी. और जो पृच्छक वक्ताके स्वर न्यारे २ होंय और राश्यादिकमेंभी तफावत हो अथवा सुषुमनामें प्रश्न करे तोभी मनसा पूरी न होय.

प्रश्न- रोगके,

पृच्छक जिस ओरसे प्रश्न करे तत्व और स्वर उसके संगाती हों तो बीमारी जल्द हट जाय और जो स्वर तत्वादिक आपसमें संगाती नहीं होय तो बीमारी बढ़े और जो पृच्छक चलते स्वरकी तरफसे उठके बंध स्वरकी तरफ जाके प्रश्न करे तो बहुत रोजमें बिमारी दूर होय.

और जो आकाशतत्व और सुषुम्नामें प्रश्न करे तो बीमार बहुत कष्ट पावे. और जो पवन तत्वमें प्रश्न करे तो बीमार नहीं बचे और जो कोई और तत्वमें प्रश्न करे तो रोग जाय.

जो कारज दाहिने स्वरमें करने चाहिये लिखे जाते हैं.

जानना चाहिये कि दाहिने स्वरमें उन कामोंको करना चाहिये. जाच रहा अर्थात् चलते हुए काम जिनसे जलदी निश्चिंत हो जाँय जैसे भोजन करना जो जलदी पच जाय और लड़ाईको सवार होना जो जल्दी बैरीको जीतकर आवे ऐसी दिशा जाना. विषय भोग करना, स्नान करना, बाण विद्या आदि विद्याओंको सीखना, घोडेपर सवार होना, करज लेना, करज देना, ब्योपार करना; बिमारका इलाज करना, नांवपर सवार होना; स्वरोंके रोकनेका अभ्यास करना, शिकारको जाना, बैरीके घर जाना, प्यारेके मिलापको जाना और इसी भांतिके काम करने चाहिये.

जो कार्य बायें स्वरमें करनेके हैं उनको करना चाहिये सो लिखे हैं.

बांये स्वरमें उन कामोंको करना चाहिये कि जो स्थिर हो आर्थात् बहुत कालतक ठहरे जैसे मकानकी नीव लगाना जो बहुत वर्षतक ठहरे वा हुकूमतकी गद्दीपर बैठना जानो, बहुत काललों हकूमत करे ऐसेही मकानमें प्रवेश करना, विवाह करना, कपड़े बनवाना, नवीन पोशाख पहरना, दवाखाना, गांव बसाना, चाकर होना, परदेशमें फिरना, घरकी ओर खेती करना, खेतीमें बीज डालना, वस्तुका मोल लेना, परमेश्वरकी भक्तिमें ध्यान लगाना, बाग कूवा हौद नहर आदिका बनवाना, दोस्त करना, पुण्य करना, पाणी पीना और इसी प्रकारके काम करने योग्य हैं.

सुषुम्नाके कारज करनेका विचार.

सुषुमनामें दम रोकनेका अभ्यास करना और जोगका अभ्यास करनेके सिवाय और कोई काम नहीं करना चाहिये, वार्जित है.

सर्गुणमें काज करनेके लाभ.

सर्गुणमें जो काम किया जाय उस्का बडा लाभ है. जैसे दीपकमें तेल भरके वाती जरावे तौ वह दीपक संध्यासे सबेरेलों जलता रहै, ऐसेही जब कहीं आग लगे तो एकलोटा जलकूं ऐसे मंगाकर अग्निकी तरफ मुखकरके एक दममें सर्गुणके साथ चढावे तो अग्नि आगे नहीं बढे जहां की तहां शीतल हो जाय और किसी बैरीसे मिलाप करनेकी इच्छा होय तो एक बरतनमें जल लेकर सूर्यके सामने नासिकाके रस्तं सर्गुणमें चढ़ाय जाया करे तो थोड़ेहि दिनोंमें वेरीके चित्तसे वैर भाव जाता रहेगा.

युद्धमें सवार होनेके समयका विचार.

पवन तत्वमें सवार होय तो वैरीसे जीतके आवे. और जो पृथ्वी तत्वमें सवार होय तो वैरीसे मिलाप करके आवे. और जो जल-तत्वमें सवार होय तो घायल होयके भागे. और जो अग्नितत्वमें सवार होय तो युद्ध जीते या शत्रुसे मिलाप होय. और जो आकाशतत्वमें सवार होय तो शहीद होय. और जो सुषुम्नामें सवार होय तो फिरकर घर आवे. इस लिये सुषुमनामें सवार होय तो बुरा और इडामेंभी लड़ाईके लिये सवार होना नहीं चाहिये. और पिंगलामें सवार होय तो लड़ाई जीतकर आवे और जो दोनों सरदार एकही स्वरमें सवार होय तो पहिले जो सवार होय उसकी जीत होय. युद्धके वक्त जिस सरदारकी पीठ दक्षिण या पश्चिमकी ओर होगी वो जीतेगा.

नये सालकी हानिलाभका विचार.

जानना चाहिये कि, जिस समय मेषकी संक्रांति या चैत्रशुदि पडवा लगे उस समय तत्वोंका विचार करे. जो जल या पृथ्वीका तत्व बांये स्वरसे चले तो सब प्रकारसे सुख और चैनकी प्राप्ति होय. खेती अच्छी होय. संसारमें खुशी होय. जो जल या पृथ्वीका तत्व दाहिनी ओरसे जारी होय तो वर्षा होय, समा होय और भाव भी अच्छा रहे; घांस नहीं उपजे. और जो अग्नितत्व दाहिनी ओरसे जारी होय तो वर्षा बहुत थोडी होय. बिमारी बढे और काल पडे. और जो वायुतत्व बांई ओरसे जारी होय तो मेह कुसमयमें वर्षे. अन्नका भाव पिछले वर्षसे चौथाई रह जाय और देशदेशके राजा आपसमें वैरभाव जीत लावे. इस लिये इधर उधर बडा दुःख मनुष्योंको प्राप्त होय. और जो आकाशतत्वमें बांई ओरसे दृष्टी पडे तो प्रलयकाल होय. एक बूंद नहीं

वर्षे. और जो सुषुमना होय तो इतनी वर्षा होय कि बीज पृथ्वीमेंका बह जाय और नया राजा गद्दीपर बैठे. और उसका बिचारनेवाला वर्षके अंतलों मर जाय.

मुहूर्त–मनुष्य जब रोजगारके लिये परदेशको गमन करे तो चाहिये कि पूरब उत्तर दिशाको जाय तो दाहिने स्वरमें गमन करे. और इस बातका विचार ले कि, तिथि वार घड़ी पल राशि दिशा दाहिने स्वरके संगाती होवें और गमनके समय प्रथम दाहिना पैर उठा तीन पैड चले फिर खड़ा होकर दाहिना पांव उठाके चला जाय तो आशा पूरण होय. और दक्षिण पश्चिमकी ओर बांये स्वरमें गमन करना चाहिये. परंतु तिथि वार राश्यादिक यांही स्वरके संगाति हों और गमनके समय बांया पग उठावे चार पैंड चले फिर थोड़ी देर ठहरके बांया पग उठाके

चला जाय तो मनसा पूरण होय. सुषुमना स्वर आकाशतत्वमें गमन करे जो कोई ॥ उलटि न आवे आपस है सदा दुःख सोई ॥

अपना अन्नदाता व गुरु पिता आदि मालिक मुरब्बी कोई चूकपें क्रोधित होके दंड या सजा देनेको बुलावे तो निःसंदेह जानेके समय जौनसा स्वर चलता हो उस तरफका पग प्रथम उठाके जाय और मालिकके सामने पहुंचे तब अपने स्वरके देखे जो बाया स्वर होय तो मालिकके दाहिने और दाहिना स्वर अपना होय तो मालिकके बांई ओर खडा होके मालिकके प्रश्नका उत्तर देता जाय तो इस कर्तव्यकी तासीरसे कुशलसो विदा हो आवै, और मालिककी प्रथमसे अधिक प्रीति हो.

पक्षके पक्ष निज शरीरके सुख दुःखका विचार.

कृष्णपक्षकी पड़वाको प्रातसमय सोता हुआ मनुष्य दाहिने

स्वरमें जागे तो १५ दिनतक कोई बातकी बिमारी वाके शरीरमें नहीं उपजे. निरोग रहे और बांये स्वरमें जागे तो सरदी करके कोई रोग शरीरमें उपजे, निरोगी नहीं रहै और रोगके हटानेके लिये पुरानी रुईसे नाक बंद राखे, जबलों बिमारी हटे नहीं. ऐसेही शुक्लपक्ष-की पडवाको सोता हुआ मनुष्य जो बांये स्वरमें जागे तो १५ दिनतक निरोगी रहै और दाहिने स्वरमें जागे तो कोई बिमारी गरमी करके सतावे. वाके हटनेतक दाहिनी नासिकाको पुरानी रुईसे बंध राखे.

प्रतिदिन सुखका विचार.

सोम बुध आदि चंद्रवारको सोता हुआ मनुष्य प्रातःकाल बांये स्वरमें जागे तो दिन भर सुखी रहै. और जो सूर्यके संगाती दाहिने स्वरमें जागे तो वा दिन मनमें कुछ चिंता उपजे ऐसेही शनि आदि सूर्यवारको दाहिने स्वरमें जागे तो निःसंदेह रहे. और जो चंद्रके संगी बांये स्वरमें जागे तो कुछ चिंता मनमें उपजे.

स्वरोंके साधना—जो मनुष्य दिनमें बांया स्वर और रात्रिमें दाहिना स्वर चालता राखे तो या साधनसे शरीरमें कोई रोग नहीं उपजे और आलस्य नहीं रहे. चैतन्यता दिन दिन बढ़ती जाय और १२ वर्ष पीछे वाके शरीरमें सर्प बीछूका विष नहीं चढ़े.

स्वरोंकी पलटनेकी रीत—दिनमें दाहिनी नासिका और रात्रि में बांई नासिकाको पुरानी रुईसे बंद राखे तो दिनभर बांया स्वर और रात्रिमें दाहिना स्वर चलता रहे. जो कभी मनुष्यको दिन रात्रिमें किसी समय स्वर पलटना अवश्य हो तो दाहिनी करवटके लेटनेसे बांया स्वर और बांई करवटके लेटनेसे दाहिना स्वर जारी होजाता है. अथवा इन बैठखनसे स्वरोंको पलट ले दाहिनेसे बांया हो जाय, बांयेसे दाहिना होजाय.

स्त्रीके गर्भका व्यौरा तत्वस्वरोंके विचारसे करना.

जो बांए तत्वमें दाहिने स्वरकी तरफसे गर्भ रहे तो बेटा भाग्य-

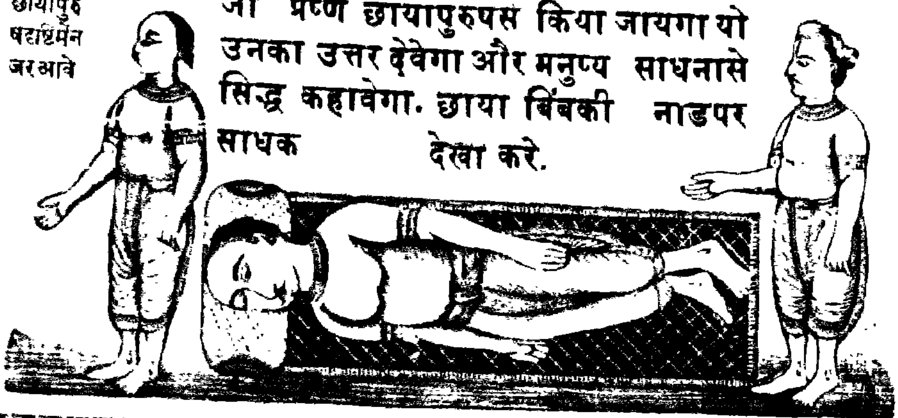
वान् शुभलक्षणसें पैदा होवे. और जो इनही तत्वमें बांये स्वरकी ओरसे गर्भ रहे तो बेटी पैदा होय. और स्त्रीके मगजमें वीर्यके दोष करके थोडे ही दिवस भय विकार उपजे. और जल तथा पृथ्वी तत्वमें बांये तत्वकी ओरसों गर्भ रहे तो बेटी भाग्यवती शुभलक्षणी पैदा होय और जो इन्ही तत्वांमें दाहिनी स्वरके ओरसे गर्भ रहे तो बेटा पैदा होय; परंतु दो चार दिनके पीछे वा बेटाकी महतारी मर जाय अथवा छः सात महिनेका गर्भ गिर जाय और जो आकाश तत्वमें गर्भ रहे तो बालक पेटहीमें गायब हो जाय. और जो मनुष्य नावमें गर्भ प्रेत बाधासे गिरपडे. अथवा बेटा पैदा होय तो योगी महापुरुषोंमें बडा नामी होय.

छाया पुरुषके साधनेकी क्रिया.

सूर्य या चांद या दीपकके उजालेमें मनुष्य खडा होयके अपनी छायाकी नाडमें प्रतिदिन पांच घडीतक देखे. फिर पांच घडी-

तक पीछे वहांसे दृष्टि उठाके एक दृष्टि सन्मुख देख लिया करै. ऐसे करते २ थोड़ही दिनोंमें छायापुरुष दूरसे पीठ दिये हुए दृष्टि पड़ेगा. फिर सने २ पेरे आते सामने होय छमासमें दृष्टिके आगे अपनी मूर्तिका पुरुष दिखा करेगा, और साधना पूरण होयगी. फिर तो जो प्रश्ण छायापुरुषसे किया जायगा यो उनका उत्तर देवेगा और मनुष्य साधनासे सिद्ध कहावेगा. छाया बिंबकी नाडपर साधक देखा करे.

छायापुरुष दर्शन जर आवे



इसलोक और परलोकके सुखप्राप्ति होनेका साधन.

पहिले साधन मनुष्यको चाहिये कि रात्रिके समय जब सोया चाहे तब जो काम भले बुरे दिनमें किये होंय उनको विचारके फिर जो काम भला बन पड़ा होय उसको ईश्वरकी अति दयालुतासे जाने और जो काम बुरा बन पड़ा होय तो उसका दोष आपे पर मानके फिर उनको त्यागनेकी प्रतिज्ञा करै.

दूसरा साधन.

जानना चाहिये कि सगुण स्वरमें 'सो' और निर्गुणस्वरमें 'हं' प्रकाशित करते हैं. दोनों पद मिलके 'सोहं' हुआ. इस पदका जाप सब जीवोंका नासिकाके द्वारा निसदिन आपही आप होता है और इसका अर्थ यह है कि 'जो वो है सो मैं हूं.' परंतु अविद्याके कारण कोई जानता नहीं. जो मनुष्य या जापसे मन लगावे और रात्रि दिन याहीकी ध्यानमें सुरत लगाय राखे वह

महापुरुषोंकी पदवी पावे; क्योंकि इस जापसे अविद्याका अंधकार मिट जाता है और विद्याका प्रकाश हो जाता है.

तीसरा प्रकार भक्तिके साधनमें.

भक्ति तीन प्रकारकी है. सद्गुरुभक्ति संतभक्ति व रामसाधन. गुरुको परम दयालु ईश्वर जानके मन बच कर्म करके निस दिन ऐसी सेवा करे जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पुरुषकी साधना संतभक्ति, साधुभक्तोंकी सेवा तन मन धन करके जहांतक बनसके तहांतक करे. कदाचित् अपने पास धन नहीं होय तो जिस प्रकार बने उसकी सेवाके लिये उपकार करे वह रामसाधनभक्ति. इसमें दो भेद हैं. पहिली मानसी सेवा जो मन करके निसादिन अपने इष्टदेवके ध्यानमें मगन रहे और समय समयकी सेवामें चित्तको लगाये राखे जितनी सांची प्रीतसे मनको बुद्धि करके अर्थात् ईश्वरको सब

जीवोंमें व्यापक जाने. अरु मानसी सेवामें मन लगावेगा उतनीही जल्दी दिव्य दृष्टि हो जावेगी.

दूसरी प्रतिमाकी सेवा इसमें मृतिका भाव न समझे साक्षात् नंदकुमार जानके जैसे पांच वर्षके बालकको मातापिता लाड करे तैसे श्रीठाकुरजीका प्यार करे और मनवच कर्म करके सेवामें चित्त लगाए राखे.



कालज्ञानकी रीति ।

प्रथम दाहिने हाथकी मुठि बांधके मस्तकमें लगायके पहुंचावे दृष्टि कर लिया करे छः महिने पहिले मुट्ठी और हाथ न्यारे २ दीखेंगे. फेर दूसरे हाथकी मध्यमाको मोडके अंगुष्ठकी जडमें लगायके बाकी रही अंगुलियोंको धरतीपर जमायके एकएकको

उठायके फिर जहांकी तहां स्थित करे. दो पहर पहिले मृत्युकालसे अनामिका उठेगी तीसरे दाहिना स्वर मृत्युकालसे २ वर्षके पहिले २ रात २ दिन १ वर्ष पहिले ५ दिन ६ मास पेस्तर १५ दिन ३ मास पेस्तर २० दिन २ दिन ३० दिनरात्रि बराबर चलता है ॥

॥ दोहा ॥ ॥ स्वासनस्वासन कृष्ण रट, वृथा स्वासमति खोय ॥ नाजान यह स्वासको, यही अंतकहुं होय ॥ १ ॥ इति ॥ स्वरोदय-सारसमाप्त ॥ ॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ शुभंभवतु ॥

॥ इति स्वरोदय समाप्त ॥

दिनचर्या ।

स्वास्थ्यरक्षाके लिये चर्या (आहार, विहार) ठीक ठीक होना बहुत जरूरी है । आजकल चर्या ही के बिगड जानेसे भारत वर्षमें सर्वत्र अकालमृत्यु और प्लेग, हैजा आदि देशविध्वंसक रोग दृष्टिगोचर होरहे हैं । अतएव इस समय देशको इस संकटमें बचानेके लिये दिनचर्या जाननेकी कितनी बड़ी जरूरत है यह विचारवान् लोग स्वयं विचार सकते हैं । बस, इसी मतलबको हल करनेके लिये यह पुस्तक मुख्य करके चरक, सुश्रुत, और वाग्भट आदि आर्यवैद्यकके ग्रन्थोंके आधारपर पुस्तक रची गयी है । इसमें प्रातःकाल सोके जानेसे लगाकर रातके सोनेतकके सब प्रकारके आहार विहारोंका वर्णन किया गया है अर्थात् मनुष्यजातिके समस्त व्यवहारों एवं व्यवहारमें आनेवाली संपूर्ण वस्तुओंका यथावत् विवरण किया गया है । इससे स्वास्थ्यरक्षा और व्यवहारशिक्षाके लिये यह पुस्तक प्रत्येक व्यक्तिको अपने पास रखने लायक है । बहुतसे विद्वनोंका मत है कि सरकारी स्वास्थ्यविभाग तथा शिक्षाविभाग इसको शिक्षाक्रममें संमिलित करके तथा सर्व प्रांतीय भाषाओंमें इसका अनुवाद कराकर सर्वसाधारणमें इसकी शिक्षाका प्रचार करे तो प्रजाका बड़ा हित हो, इससे आप समझ सकते हैं कि पुस्तक कितने कामकी है । मू. आ. ६ डा. आ. १

सितारचन्द्रोदय ।

अर्थात्

(सितार वाद्यका अपूर्व, गुणद व उपयोगी पुस्तक)

जिस प्रकार चन्द्रमाके उजेलेसे रात्रिमें सूझने लगता है अथवा चन्द्रोदय रसायनसे वातादि दोष दूर होते हैं उसी प्रकार इस पुस्तकसे सितार बजाना सीखनेकी सब कठिनाइयाँ दूर होकर, सितारके आनंद इच्छुक, जनमनोभिलपित आनंद, राग विचार व उनके स्वरोंद्वारा सितारपरसे बजानेकी समस्त गतोंका प्रकार सुगमयुक्तिसे सरलतामें प्राप्त होता है, और विशेष बुद्धिमानीसे हार्मोनियम, जलतरंग आदिकभी सिखनेमें आसानी पड़ती है क्योंकि इसमें गांधर्ववेदका सभी विषय सितारकी गतें, तालसुर, तान, पल्टा, आलाप, गमक, खटका, पुकार इत्यादि और कौन रागमें किस तरहसे पड़दे रखना व तार द्वारा स्वरकी गतियोंका यानीः—" दा, ड़ा, दिड़, दिड़, दा " और " सा—रे—ग—म—प—ध—नी " स्वरोंका आरोह करके, सितारके नकशों द्वारा, रागरागिनियोंके अचल ठाटका ब्योरा, अत्युत्तम सरल रीतिसे दर्शाया है.

यह पुस्तक कैसी रोचक और संगीतशास्त्रका भंडार है सो हम कह नहीं सकते, पढनेवालाहि वास्तविक आनन्द आस्वादन करके जान सकता है इस पुस्तकमें अन्यान्य इतने विषय हैं कि, यहां स्थानाभावसे उनका दिग्दर्शन भी नहीं करा सकते. किंबहुना, हिन्दीमें सितार वाद्यके सिखानेवाली ऐसी उत्तम पुस्तक आज तक कहीं नहीं छपी. जिन महाशयोंको लेना हो वे निम्न लिखित पतेपर पत्र व्यवहार करें. सबके सुभीतेके लिये मूल्य भी बहुतही थोड़ा अर्थात् केवल १॥) रुपया मात्र रक्खा है. डाकमहसूल ४ आना.

पुस्तक मिलनेका पता:—

हरिप्रसाद भगीरथजीका.

प्राचीन पुस्तकालय, कालाकादेवी रोड—रामवडी—**बम्बई.**

मुद्रकः—**चिंतामण सखाराम देवळे,** मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हंट्स् ऑफ् इंडिया सोसायटीज् बिल्डिंग, सँढर्स्ट रोड, गिरगांव—**मुंबई.**

प्रकाशकः—**श्रीयुत व्रजवल्लभ हरिप्रसादजी** प्राचीन पुस्तकालय, कालबादेवी रोड, रामवाडी—**बम्बई.** संवत् १९७३—शके १८३८—आषाढ मास.

इति चरणदासकृत

स्वरोदयसार समाप्त ।

अध्यातमपंचासिका ।

दोहा—अष्ट करम के बंध में, बँधे जीव भव वासि ।
करम हरे वसु गुण भरे, नमूं सिद्ध सुख राशि ॥ १ ॥
जगत माहिं चहुं गति विषै, जन्म मरण वस जीव ।
मुक्ति मांहिं तिहुं काल में, चेतन अमर सदीव ॥ २ ॥
मोक्ष मांहिं सेती कभी, जग में आवै नांहि ।
जग के जीव सदीव ही, करम काटि शिव जांहि ॥ ३ ॥
पूरव करम उदय भये, जीव करै परिणाम ।
जैसैं मदिरा पानसों, करै गहल नर काम ॥ ४ ॥
तातैं बांधे करम को, आठ भेद दुखदाय ।
जैसैं चिकने गातपै, धूलि पुंज जमजाय ॥ ५ ॥

अ० फिर तिन कर्म्मन के उदय, करै जीव बहु भाव । पं०
फिरकै बाँधै कर्म्म को, यह संसार स्वभाव ॥ ६ ॥
१ शुभ भावन तैं पुन्य है, अशुभ भाव तैं पाप ।
दुहुं आछादित जीव सो, जान सकै नाहिं आप ॥७॥
चेतन कर्म्म अनादि के, पावक काठ बखान ।
क्षीर नीर तिल तेल ज्यौं, खान कनक पाखन ॥ ८॥
लाल बँध्यो गठरी विषैं, भान छिप्यो घन माहिं ॥
सिंह पींजरे में दियो, ज़ोर चलै कछु नाहिं ॥ ९ ॥
नीर बुझ्वै आगिन को, जलै टाकनी माहिं
देह मांहिं चेतन दुखी, निज सुख पावै नाहिं ॥१०॥
यदपि देह सों छूटत है, अन्तर तन है संग । १
सो तन ध्यान अगनि दहै, तब शिव होय अभंग ॥११॥

राग दोष तैं आप ही, परे जगत के मांहि ।
ज्ञान भाव तैं शिव लहै, दूजा संगी नाहिं ॥ १२ ॥
जैसैं काहू पुरुष के, द्रव्य गड्यो घर माहिं ।
उदर भरै करि भीख सों, व्यौरा जानै नाहिं ॥ १३ ॥
ता नर सों किन हू कह्यो, तू क्यों मांगै भीख ।
तेरे घर में निधि गड़ी, दीनी उत्तम सीख ॥ १४ ॥
ताके वचन प्रतीति सों, हर्ष भयो मन मांहिं ।
खोद निकाले बिन तिस, हाथ लगै कछु नाहिं ॥१५॥
त्यों अनादि की जीव के, परजय बुद्धि बखान ।
मैं सुरनर पशु नार की, मैं मूरख मतिमान ॥ १६ ॥
तासों सतगुरु कहत हैं, तू चेतन अभिराम ।
निहचै मुक्ति स्वरूप है, ये तेरे नाहिं काम ॥ १७ ॥

अ० २ पं० २

काल लब्धि परतीत सौं, लखै आप में आप ।
पूरण ज्ञान भये बिना, मिटै न पुन्य न पाप ॥ १८ ॥
पाप कहत हैं पाप को, जीव सकल संसार ।
पाप कहैं जे पुन्य को, ते विरले मुनिधार ॥ १९ ॥
बन्दी खाने में पड़ो, जानै छूटे नाहिं ।
बिन उपाय उद्यम किये, त्यों ज्ञानी जग मांहिं ॥२०॥
साबन ज्ञान बिराग जल, कोरा कपड़ा जीव ।
रजक दक्ष धोवै नहीं, विमल नहोय कदीव ॥ २१ ॥
ज्ञान पवन तप अग्नि बिन, देह मूस जिय हेम ।
कोट वर्षलों राखिये, शुद्ध होय मत केम ॥ २२ ॥
दरव करम नोकरम तैं. भाव करम तैं भिन्न ।
विकलप नहीं सुबुद्धि के. शुद्ध चेतना चिन्न ॥ २३ ॥

चारों नाहीं सिद्ध कैं, तू चारों के मांहि ।
चारि त्रिनाशे मोक्ष है, और बात कछु नांहि ॥ २४ ॥
ज्ञाता जीवन मुक्त है, एक देश यह बात ।
ज्ञाता जीवन मुक्त है, एक देश यह बात ।
ध्यान अग्नि विन करम बन, जलेन शिव किम जात ।२५।
दर्पण काई अथिर जल, मुख दीखे नाहिं कोय ।
मन निर्मल बिन थिर भये, आप दरश क्यों होय ॥२६॥
आदि नाथ केवल लह्यो, सहस बर्ष तप ठान ।
सोई पायो भरत जी, एक महूरत ज्ञान ॥ २७ ॥
राग दोष संकल्प है, नय के भेद विकल्प ।
दोष भाव मिट जाँय जब, तब शिव होय अनल्प ॥२८॥
राग बिराग दुभेद सों, दोय रूप परिणाम ।

रागी भ्रमियां जगत के. बैरागी शिव धाम ॥ २६ ॥
अ० एक भाव है हिरण के, भूख लगै तृण खाय । पं०
एक भाव मंजार के. जीवखाय न अघाय ॥ ३० ॥
३ बिबिधि भाव के जीव बहु, दीखत हैं जग माहिं ।
एक कछू चाहै नहीं, एक तजै कछु नाहिं ॥ ३१ ॥
जगत अनादि अनन्त है, मुक्ति अनादि अनन्त ।
जीव अनादि अनन्त है, कर्म दुविधि सुनि सन्त ॥ ३२ ॥
सब के करम अनादि के, करम भव्य के शान्त ।
करम अनन्त अभव्य के, तीन काल भटकान्त ॥ ३३ ॥
फरस बरण रस गन्ध सुर. पांचों जानै कोय ।
बोलै डोलै कौन है. जो पूछै है सोय ॥ ३४ ॥ ३
जो जानैं सो जीव है. जो मानै सो जीव ।

जो देखै सो जीव है, जीवै जीव सदीप ॥ ३५ ॥
ज्ञान पना दो विधि लखै. विषय निर्विषय भेद ।
निर्विषयी सम्वर लहै, विषयी आश्रव वेद ॥ ३६ ॥
प्रथम जीव सरधान सों. करि वैराग्य उपाय ।
ज्ञान क्रिया सों मोक्ष है. यही बात सुखदाय ॥ ३७ ॥
पुद्गल सों चेतन बँध्यो, यह कथनी है हेय ।
जीवबंध्योनिजभावसों, यहकथनीआदेय ॥ ३८ ॥
बन्धलखैनिजऔरसों, उद्यमकरैनकोय ।
आपबंध्योनिजसोंसमझि, त्यागकरैशिवहोय ॥ ३९ ॥
यथा भूप कों देख के. ठौर रीति कों जान ।
तब धन अभिलाषी पुरुष. सेवा करै प्रधान ॥ ४० ॥
तथा जीव सरधान करि. जानै गुन पर्याय ।

सेवै शिव धन आस धरि, समता में मिलजाय ॥४१॥
तीन भेद व्यौहार सों, सबही जीव सब ठाम। बहिरन्तर परमातमा,
निहचै चेतन राम ॥४२॥ कुगुरु कुदेव कुधर्म रति, अहम् बुद्धि सब ठौर।
हित अनहित समझै नहीं, मूढन में सिर मौर ॥ ४३ ॥ आप आप पर
पर लखै, हेया हेय सजान। अव्रति देश व्रतिमहा, अतीसर्वहिंमतिमान।
॥ ४४ ॥ जा पदमैं सब पद लशैं, दर्पनज्यों अविकार। सकल निकल
परमातमा, नित्य निरंजन सार ॥ ४५ ॥ बहिरातम को भावताज,
अंतर आतम होय। परमातम ध्यावै सदा, परमातम सो होय ॥ ४६ ॥
बूंद उदधि मिलहोय दधि, वाती फरस मकाश। त्यों परमातम होत है,
परमातम अभ्याय ॥ ४७ ॥ सब आगम को सारजो, सब साधन को
ध्येव। जाकों पूजैं इन्द्रसों, सो हम पायो देव ॥ ४८ ॥ सोहम् सोहम्
नितजपै, पूजा आगम सार। सतसंगति में बैठना, ये पकहैं व्यवहार
॥४९॥ अध्यातम पंचासिका, माहिंकह्यो जो सार। द्यानत ताहिलगे
रहो, सब संसार असार ॥ ५० ॥

बाबूसूरजभानु वकील देवबन्द जिला सहारनपुरने गुर्ज्जरप्रैस में छपवाया मूल्य एकपैसा

ओ३म्

परमात्मा जयति ।

दयानंदमतसूची.

जगन्नाथदास संकलित.

मुरादाबाद.

श्रीयुत शिवलाल गणेशीलाल के
"लक्ष्मीनारायण" प्रेस में मुद्रित हुई.

धर्मसभायें और धर्मात्मा लोग इसे छपवायें
वा २।) सैकड़ा यहां से मँगाकर सर्वत्र फैलायें

॥ परमात्मा जयति ॥

दयानन्द मत सूची ।

कैसा पंथ चलाया स्वामीजीने कैसा पंथ चलाया ॥
असत्यार्थ सत्यार्थ कहावे कलियुग की यह माया ।
ब्रह्मादिक के सद्ग्रंथों को बेद विरुद्ध ठहराया ॥ १ ॥
त्याग किया संन्यास धर्म का राज भोग मन भाया ।
शाल दुशाले ओढ़े सुख से घृत मय भोजन खाया ॥ २ ॥
आर्य धर्म की पुष्प बाटिका को सहमूल नशाया ।
बुरा किया स्वामीजीने कीकड़ का बाग लगाया ॥ ३ ॥
स्वामीजीके अनृत कथन पर क्यों निज धर्म गँवाया ।
सत्य बिना नहीं कभी किसी ने कहीं अक्षय सुख पाया ॥४॥
लिखा प्रथम जो निज ग्रंथों में फिर उसको झुठलाया ।
सत्य असत्य का हुआ न निर्णय मन माना सो गाया ॥ ५ ॥
लिखी मुक्ति से पुनरावृत्ति अपना लिखा भुलाया ।
मुक्ति प्रकाश सद्ग्रंथ छपा जब दयानंदी शरमाया ॥ ६ ॥
कारागार कहा मुक्ति को फाँसी सदृश बताया ।

---

१ दूसरे सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ का पृष्ठ ५८०

६ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २४० मुक्तिरूप अक्षय आनंद पृष्ठ १३२

धर्मध्वज ने धर्मोन्नति का झंडा खूब उठाया ॥ ७ ॥
प्रथम उत्पत्ति लिखी जीवों की फिर अनादि बतलाया।
सद्गुरु इन्द्रमणीने उसका यह अज्ञान मिटाया ॥ ८ ॥
मिथ्या एते लिखे श्रुतियों के ऐसा तम उर छाया।
आप अज्ञानी बने और चेलों को अज्ञ बनाया ॥ ९ ॥
चार वेद में गायत्री को जो उसने बतलाया।
दिखलाओ तो हमें अथर्व में मिथ्या गाल बजाया ॥ १० ॥
प्रते ददामि ऋग्वेद में किसने गुरु को तेरे बताया।
तू झूटे के पीछे चलकर क्यों झूटा कहलाया ॥ ११ ॥
इयमाज्ञ द्वादश श्रुतियों को सामवेद की गाया ॥
चार संहिता में भी उनका कहीं पता नहिं पाया ॥ १२ ॥
अंगा दंगात् संभवसि चारों वेदों में बताया।
एक वेद में भी नहिं आया वृथा तुम्हें बहकाया ॥ १३ ॥
मातृमान् यह वचन कहीं नहिं छाँदोग्य में आया।
गप्पाष्टक ने विजया पीकर कैसा गप्प उड़ाया ॥ १४ ॥

७ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २४१
८ पहिले सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २३२ फिर दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २०९
१० पंचमहायज्ञविधि मुद्रित संवत् १९३४ का पृष्ठ २६
११ संस्कारविधि संवत् १९३३ की छपीका पृष्ठ ३१
१२ उक्त संस्कार विधिका पृष्ठ ३२
१३ उक्त संस्कारविधि का पृष्ठ ३८
१४ उक्त संस्कारविधि का पृष्ठ ७१

रूप २ वचन को उसने मुंडक का बतलाया।
समित पाणि श्रुति माँडूक्यकी लिखकर अज्ञ कहाया॥१५॥
छाँदोग्य उपनिषद् में यह श्रुतिका पता बताया।
अक्षर २ देखा हमने कहीं चिन्ह नहीं पाया ॥ १६ ॥
ह्लादयति यह श्लोक कहीं नहीं शिरोमणी में आया।
तेरे गुरु के हृदय में निश्चय अंधकार अति छाया॥१७॥
ब्राह्मणस्य विजानतः वेदों का वचन बताया।
दयानंद की बुद्धि में कैसा अज्ञान समाया॥ १८ ॥
ततो मनुष्या अजायन्त नहीं चार वेद में आया।
यजुर्वेद के नाम से उसने प्रकट अनृत छपवाया॥ १९ ॥
संन्यासी को स्त्रादिक दो झूठा श्लोक बनाया।
कपटमुनि ने लाख रुपया करके कपट कमाया॥ २० ॥
वृथा भागवत के कर्ता को झूठा दोष लगाया।
कहां भागवत में है जो कुछ दयानंद ने गाया॥ २१ ॥
हिरण्याक्ष अक्रूर प्रहलाद का जो इतिहास बनाया।

१५ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २६० और ३८२
१६ पहिले सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ १३७
१७ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३३८
१८ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ १२६
१९ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २२३
२० दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ १३५

तेरे गुरू ने मिथ्या लिखकर अपना हास्य कराया ॥ २२ ॥
वोपदेव जयदेव को उसने जो भ्राता बतलाया।
क्यों मिथ्या भाषी होने का शिर पर भार चढाया ॥ २३ ॥
चौड़ा जो छह कोश पूतना का शरीर ठहराया।
कभी भागवत को भी देखा मन माना सो गाया ॥ २४ ॥
दो जैनों ने श्री शंकर को विषयुत अन्न खिलाया।
लिखा झूट जैसा वैसाही अन्त समय फल पाया ॥ २५ ॥
चुंबक पत्थर सोमनाथ में उसने लगा बताया।
अधर मूर्ति खड़ी लिखी झूटा इतिहास बनाया ॥ २६ ॥
कुंभकरण की मूछ को लंबा योजन एक बताया।
तुलसीदास को दयानंद ने मिथ्या दोष लगाया ॥ २७ ॥
धोखा दे और युद्ध से भागे गीता में कहां आया।
दयानंद की बुद्धि देखो उलटा अर्थ बनाया ॥ २८ ॥
नारायण नाम ईश्वर का है यह पहिले छपवाया।

---

२२ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३३३--३३४ फिर ३३३
२३ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३३५
२४ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३३४
२५ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २८७
२६ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३१९
२७ पहिले सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३५४
२८ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ६१

नारायणाय नमः को फिर क्यों वेद विरुद्ध बतलाया॥२९॥
नमःशिवाय यह वाक्य वेद में हमने तुझे दिखाया।
तेरे गुरु ने निंदा से उसकी क्या लाभ उठाया॥३०॥
कहीं लिखा पृथ्वी का चलना कहीं स्थिर ठहराया।
देख अथर्व में वेदविरोधी ध्रुवा पृथ्वीपद आया॥३१॥
कहे त्रिकालदर्शी ईश्वर को उसको मूर्ख बताया।
निजमुख मूर्ख बने स्वामी जी आप वही छपवाया॥३२॥
बीससेर घीसे मुरदे का दाहकर्म बतलाया।
नहीं तो जंगल में छोड़ आओ यह उपदेश सुनाया॥३३॥
भस्म अस्थि को मृतक की बाग और खेतों में डलवाया।
धिक् २ माता और पिता के वपुका खात बनाया॥३४॥
ब्रह्म विजातीय भेद शून्य यह क्या अशुद्ध मन भाया।
खंडन कर अद्वैत बाद का शरण उसी की आया॥३५॥

---

२९ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ १९ फिर २६

३० दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३४९

३१ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ १३६ से १३९ तक तथा दूसरे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २२८ फिर दूसरीबारकी छपी संस्कारविधि के पृष्ठ १२९में उक्त श्रुति हैं

३२ दूसरे सत्यार्थप्रकाशका पृष्ठ १९४ फिर आर्य्याभिविनय पहिले का पृष्ठ ८

३३ संस्कारविधि मुद्रित संवत् १९३३का पृष्ठ१४१

३४ उक्त संस्कारविधि का पृष्ठ१५०

३५ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २४

सत्य नहीं उपवास किसी का यह असत्य छपवाया ।
फिर उपनयन कर्म वाले को क्यों उपवास बताया ॥ ३६ ॥
एकादशी निर्जल जिसने लिखी उसे कसाई ठहराया ।
गोवध तक जिस ने लिखडाला उसने क्या पद पाया ॥३७॥
शिखा सूत्र के त्यागी को ईसाई समान बतलाया ।
क्रिया त्याग दोनों का उसने कहो कौन कहलाया ॥ ३८ ॥
स्वर्ग नरक नहीं लोक कोई यह भी असमंजस गाया ।
स्वर्ग सिद्धि को देख, बुद्धि में अनुचित तेरी समाया ॥३९॥
ब्राह्म और आसुर विवाह का लक्षण क्या ठहराया ।
मनुस्मृतिका अर्थ न समझे दिखलाई निजमाया ॥ ४० ॥
भाषा ग्रंथ सकल हैं झूटे यह आपही समझाया ।
निज कपोल कल्पित भाषा में फिर क्यों तुम्हें फसाया ॥४१॥
दुःख और सुख भोग जीव का जब पर तंत्र बताया ।
कर्मों के करने में उसको फिर स्वतंत्र क्यों गाया ॥ ४२ ॥

---

३६ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ४३२ फिर पहिली संस्कारविधि का पृष्ठ ९६

३७ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३४५ पहिले सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३०३

३८ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २७९

३९ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ९६०

४० दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ९२

४१ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ७१

४२ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ १९२ तथा ५९०

पाप विना भोगे नहीं छुटता यह सिद्धान्त सुनाया ।
मुक्ति किसी की होगी कैसे यह भी कुछ समझाया ॥ ४३ ॥
मनसा परिक्रमा लिख ईश्वर परिच्छिन्न ठहराया ।
वेदों की उत्पत्ति लिखी अच्छा नित्यत्व बृढ़ाया ॥ ४४ ॥
रहा आर्यावर्त्त में सब दिन जो वही आर्य कहाया ।
आदि सृष्टि तिब्बत में लिख क्यों कुलको दाग लगाया ॥ ४५ ॥
शूद्रो ब्राह्मण तामेति का उलटा अर्थ सुझाया ।
अनुलोम और प्रतिलोम विषयमें मनुने जो दर्शाया ॥ ४६ ॥
उत्तम कुल की संतानों को नीचों के पहुँचाया ।
नीचों की सन्तान उन्हें दे हाहाकार मचाया ॥ ४७ ॥
वेद शास्त्र में विद्वानों को देव शब्द जो आया ।
विद्वज्जनने व्यासादिक को क्यों नहीं देव लिखाया ॥ ४८ ॥
सृष्टि वर्ष गत शेष की गणना कर निज हास्य कराया ।
दो किरोड़ लाख उनसठ ऊपर बीससहस्र उड़ाया ॥ ४९ ॥
वेदों की शाखाओं में भी चार का धोखा खाया ।

४३ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ३२२

४४ पंचमहायज्ञविधि का पृष्ठ १, ४ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ २,

४५ आर्योद्देश्यरत्नमाला पृष्ठ ११ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ १८९, फिर २२४

४६ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ८८

४७ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ८९

४८ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ १८८

४९ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ २३–२४

महाभाष्य के वचन से हमने झूटा उसे बनाया ॥ ५० ॥
ग्यारह सौ सत्ताइस शाखा को ऋषि कृत ठहराया ।
शाकलादि चार शाखा को फिर क्यों वेद बताया ॥५१॥
सौ वर्षों के दिनों की गिनती का हिसाब फहराया ।
तीन लाख और साठहजार लिख निज अज्ञान जनाया॥५२॥
हाय २ कैसा नियोग का अनुचित कर्म चलाया ।
उत्तमकुलकी अबलाओं को व्यभिचारिणी बनाया ॥५३॥
दश पुरुषों से करें नियोग इतने में सब्र न आया ।
लिखे बार दो तीन और सन्यासी नहीं शरमाया ॥ ५४ ॥
गोविंद २ कहो अधर्म का ज़िक्र ज़ुबां पर आया ।
इससे अधिक पाप क्या होगा जिसे नियोग ठहराया॥५५॥
पति रहे परदेश में घर पत्नी ने पुत्र जनाया ।
खूब आर्य कुलकी वृद्धिकी अच्छा धर्म सिखाया ॥ ५६ ॥
गर्भवती को भी नियोग करने का हुक्म लगाया ।
रहे गर्भ किस भांति दूसरा यह कुछ ध्यान न आया॥५७॥

---

५० दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ १८७ फिर नास्तिकका पृष्ठ२

५१ ऋगादिचार संहिता जिनको दयानंदी मूलवेद मानते हैं वे शाकल–माध्यन्दिनीय–कौथुमी–और शौनकीय नामक शाखा हैं ॥

५२ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ २४० तथा २४१

५३ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ २१४

५६ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ११२

५७ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ १२०

पति दुःखदाई हो जिसका उसको यह समझाया ।
करे नियोग संभोग किसीसे खूब धर्म फहलाया ॥ ५८ ॥
दयानंद की बातें लिखते मैं मन में शरमाया ।
दयानंदियों ने हठ करके कुछ मुज से लिखवाया ॥ ५९ ॥
सब मनुष्य सब देशों से स्त्री लेना फ़र माया ।
किसी जातिका त्याग नहीं सबसे संबंध कराया ॥ ६० ॥
एक बिवाह स्त्री पुरुषों को वेद विहित बतलाया ।
वेद विरोधी हुआ जो तूने पुनर्विवाह रचाया ॥ ६१ ॥
करो होम दोकाल मांससे यह क्या कर्म सिखाया ।
गोवध लिख सत्यार्थ प्रकाशमें सारा धर्म मिटाया ॥ ६२ ॥
केवल चार संहिताओं पर जो निज मत ठहराया ।
फिर तद् बाह्य लेख क्यों अपने ग्रंथों में छपवाया ॥ ६३ ॥
संस्कार विधि लिखित कृत्य वेदोंसे क्यों नहीं लाया
सूत्र और मनुके बचनों से सारा काम चलाया ॥ ६४ ॥
वेद बाह्य क्यों असत्यार्थ लिख वृथा अधर्म बढ़ाया ।
चार संहिताओं से कहिये किस दिन उसे मिलाया ॥ ६५ ॥
असुर म्लेच्छ राक्षस पिशाच जिसने तुमको बतलाया ।
महा अज्ञताकी जो तुमने उसे गुरू ठहराया ॥ ६६ ॥

---

५८ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ११९

६० दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ९७

६१ दूसरे सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ११५

६२ पहिले सत्यार्थप्रकाश का पृष्ठ ४५ फिर ३०२

६६ दूसरे सत्यार्थप्रकाशकापृष्ठ५८८ पहिले स०प्र०कापृष्ठ६७

कलकत्ते से रमा बाईको मेरठ में बुला बाया।
स्वामीजी ने उससे सीखा या कुछ उसे सिखाया ॥ ६७ ॥
आल काट साहिबको पहिले निजमुख ऋषिमुनि गाया।
फिर उनकी निंदाका कैसे बीड़ा आप उठाया ॥ ६८ ॥
श्री मत्मुंशी इन्द्रमणीके धनपर धर्म गंवाया।
जिनको विद्वज्जन कहते थे उनसे वैर बढ़ाया ॥ ६९ ॥
दयानंद जीके समाजमें जिसने नाम लिखाया।
दयानंद लीला को पढ़कर वह मनमें पछताया ॥ ७० ॥
ले सत्यार्थप्रकाश हाथ में अज्ञों को बहकाया।
दयानंद का देख पराजय दयानंदी घबराया ॥ ७१ ॥
जगन्नाथ का एक ग्रंथभी जिसने पढ़ा पढ़ाया।
दयानंदी से उसके सन्मुख फिर उत्तर नहीं आया ॥ ७२ ॥

॥ इति ॥

द्वितीय छंद।

देखो दयानन्द की माया, कैसा उलटा मार्ग चलाया।
सत्य सनातनधर्म मिटाया, झूटी बातों को फहलया ॥ १ ॥
आई कलियुग की अब बारी, मसला हुआ नियोगका जारी।
भोगें दश पुरुषों को नारी, खोई इज्ज़त हुरमत सारी ॥२॥
जिस का पति नष्ट हो जावे, या पीतम को रोग सतावे।
वह दसतक पति और बनावे, चार २ संतति उपजावे ॥३॥
गर्भ वती होवे जो नारी, लिखा नियोग उस को हितकारी।

गई बुद्धि लज्जा सब मारी, महा असंभव बात विचारी ४॥
जिसका पति विदेश को जावे, वह औरों से पुत्र जनावे।
जिस दिन फिर पीतम घर आवे, छोड़ और को पति मनभावे ५॥
जिसका पति होवे दुखदाई, उसे नियोग की विधि बताई।
बड़े कुकर्म की रीति चलाई, लज्जा नानिक निकट नहीं आई ॥६॥
क्या नियोग का धर्म चलाया, वेश्याओं को भी शरमाया।
सबने इसको बुरा बताया, दयानंदियों के मनभाया ॥ ७ ॥
स्वामीजीने धर्म बढ़ाया, या व्यभिचार कर्म फहलाया।
मैंने तुम्हें बहुत समझाया, क्यों तुमने निज धर्म गँवाया ॥ ८ ॥
मांस आदि से होम बताया, यह कैसा उपदेश सुनाया।
गोवध यज्ञ कर्म में गाया, आर्य धर्म को दोष लगाया ॥ ९ ॥
जो कोई भी मांस न खावे, तो पशु पक्षीगण बढ़जावे।
देखो दयानंद क्या गावे, प्रकट अधर्म को धर्म बतावे ॥ १० ॥
गाय गधीको लिखा समान, है पहिला सत्यार्थ प्रमान।
देखो दयानंद का ज्ञान, क्यों न हँसें उसपर विद्वान ॥ ११ ॥
तेरा दयानंद यह गावे, संस्कार विधि में फरमावे।
जो मुरदे को दाह करावे, बीस सेर घीसे फुकवावे ॥ १२॥
जो न बीस सेर घी पावे, अग्नि में उसको न जलावे।
पानी में भी नहीं बहावे, जाकर जंगल में छोड़ आवे ॥ १३॥
जो मुरदे की चिता लगाओ, बीस सेर घीमे फुकवाओ॥
नहीं तो जंगलमें छोड़आओ, स्वामीजीका धर्म चलाओ॥ १४।

बुद्धिमान् अब करें विचार, हो इस आज्ञा का जो प्रचार ।
फइलें दुःख और रोग अपार, शीघ्र नष्ट होवे संसार ॥ १५ ॥
मुरदे जंगल में जो पड़ें, चील और कउवे आकर अड़ें ।
निश्चय पड़ २ वे सड़ें, फिर तो खंभ मौत के गड़ें ॥ १६ ॥
पशु पक्षी मुरदों को खावें, कहीं से कहीं मांस लेजावें ।
घर २ में हड्डी बरसावें, सब मनुष्य दारुण दुखपावें ॥ १७ ॥
जो प्रस्थान उधर को करे, देखे मृतक झुंड और डरे ।
भयसे पग आगे नहीं धरे, मुखसे हाय२ उचरे ॥ १८ ॥
मृत पुरुषोंकी भस्म उठाओ-बाग और खेतोंमें डलवाओ ।
बिन दामोंका खात लगाओ, दयानंद जीके गुण गाओ ॥१९॥
पहिले मुक्ति सदाकी मानी, फिर क्या दुनियाजाती जानी ।
कहने लगा ये क्या अज्ञानी, लौट आतेहैं वांसे प्रानी ॥ २० ॥
व्यास मुनिने सूत्र बनाया, अनावृत्ति दोबार सुनाया ।
स्वामी जीने क्या फल पाया, वेद विरुद्ध उसको बतलाया॥२१॥
जोदेखे तू मुक्ति प्रकाश, सूझे पृथ्वी और आकाश ।
हो अज्ञान मूल मइनाश, मुनको कहे सदा शाबाश ॥ २२ ॥
पाप पुण्य जिनका नहीं रहा, आवागमन उन्हें क्यों कहा ।
झूठा पक्ष जिन्होंने गहा, उनका कथन नदीमें बहा ॥ २३ ॥
कारागार मुक्तिको गावे, और फांसी समान बतलावे ।
महा नास्तिक वह कहलावे, लोक और परलोक नशावे॥२४॥
जोइतिहास अक्रूरका गाया, कहां भागवतमें वह आया ।

दयानंदने झूट बनाया, और तुमको झूटा ठहराया ॥ २५ ॥
कथा प्रह्लादकी जोकुछ गाई, कहां भागवतमें वह आई ।
निर्णय करो सत्यका भाई, नहीं झूटमें कभी भलाई ॥ २६ ॥
हिरण्याक्षकी कथा जोगाओ, हमें भागवतमें दिखलाओ
नहींतो कुछ दिलमें शरमाओ, स्वामीजीकी भूल बताओ ॥२७॥
कहो पूतनाका वपु जैसा, कहां भागवतमें है वैसा ।
दयानंदने लिखा जो ऐसा, था अज्ञान बुद्धिपर कैसा ॥ २८ ॥
वोपदेव जयदेव थे भाई, कैसी झूटी बात बनाई ।
तुक तो उसने खूब मिलाई, अनृत कथन ने हँसी कराई ।२९।
झूटा आधा श्लोक बनाया, मनुस्मृति का उसे बताया ।
धन संग्रहमें स्नेह लगाया, केवल छलसे द्रव्य कमाया ॥ ३० ॥
सोमनाथकी कथा जो गाओ, कहीं लिखी हमको दिखलाओ
क्यों तुम फूटे ढोल बजाओ विद्वानोंको वृथा हँसाओ ॥३१॥
कुंभकरण की कथा सुनावे, चार कोस की मूछ बतावे ।
तुलसीदासको दोष लगावे, मिथ्यावादी क्या फलपावे ॥३२॥
जान श्रुति को शूद्र बताया, छांदोग्य का पता जनाया ।
क्या अज्ञान बुद्धिपर छाया, मकट अन्यथा कथन कराया ।३३।
किसने विष शंकरको दिया, झूटा लेख वृथा क्यों किया ।
जिसने शिरपर अपयश लिया, बहुतकाल फिर वह नहिं जिया।३४
ग्रहण विषय में वचन जो गाया, शिरोमणीका उसे बताया ।
झूठ बोलकर क्या फल पाया, अपनाही उपहास्य कराया।३५।

सो वर्षों के दिन दिलदार, तीन लाख और साठ हजार।
दयानंदने किये शुमार, है प्रत्यक्ष अज्ञान अपार ॥ ३६ ॥
शाखा वेदों की जो गावे, मुनि दृग, सूर्य चन्द्र से पावे।
कर्माचारकी उनमें आवे, महा भाष्य तुजको झुट लावे॥ ३७॥
वर्ष सृष्टि गत शेष बताये, दोकरोर से अधिक उड़ाये।
फिर भीवे बिद्वान कहाये, कलिने क्या२ रंग दिखाये॥ ३८॥
थी रोहिणी बलदेवकी माता, देख भागवतमें तू भ्राता।
दयानंद मंद क्या गाता, माताको पत्नी बतलाता॥ ३९॥
नदी वृक्ष पर्वत पर नाम, क्यों निंदितहैं ऐसी बाम।
दयानंदका यही कलाम, नहीं विवाहका उनसे काम॥ ४०॥
विद्वानोंको देव बनावें, क्यों व्यासादिक को ऋषिगावें।
वेद शास्त्रकी बात मिटावें, सो कलियुगमें आर्य कहावें॥ ४१॥
नमः शिवाय वेदमें आया, परम मंत्रको बुरा बताया।
वेद विरोधी क्या फल पाया, लोक और परलोक नशाया॥ ४२॥
वेद पृथ्वी को भ्रमा बताबे, तू विरुद्ध उसके क्यों गावे।
जो कोई सत्को झुटलावे, मरकर अधोगती सो पावे॥ ४३॥
मनसा परिक्रमा जो गावे, और ईश्वर को विभु बतावे।
ऐसा जन विद्वान कहावे, ये प्रताप कलिकाल दिखावे॥ ४४॥
जहां कहीं हो उत्तम नार, ऊँच नीच का नहीं विचार।
करो विवाह उसीसे यार, स्वामीजी यह कहें पुकार॥ ४५॥
लिखा वेद में एक विवाह, दयानंद है मेरा गवाह।

करके पुनर्विवाह उत्साह, आर्य धर्म क्यों किया तबाह ॥४६॥
आया कलियुग का अब दौर, सूझे धर्म और से और ।
साहिब करलो दिलमें गौर, हैं सब बात तौर बे तौर ॥४७॥
सत त्रेता द्वापर सब बीते, जिनमें हुए कार्य मन चीते ।
अब विषयों ने सब नर जीते, हुए धर्मसे द्विजवर रीते ॥४८॥
यारो सत्य धर्म पर रहना, मुख से सदा सत्य ही कहना ।
जो कुछ दुःख पड़े सो सहना, अनृत नदी में कभी न बहना ॥४९॥
सत्य बात सबकी ले मान, मिथ्या पर करना नहीं ध्यान ।
कोई धर्म नहीं सत्य समान, पातक महा झूठ को जान ॥५०॥
झूठ का नहीं कहीं प्रमाण, झूठ का नहीं है कल्याण ।
मिले सत्य से पद निर्वाण, कहें वेद उपनिषत् पुराण ॥५१॥
परधन पर मत चित्त चलाओ, पर त्रिय से मत स्नेह लगाओ ।
प्राणीमात्र को कभी न सताओ, तो निश्चय उत्तमपद पाओ ॥५२॥
जो कुछ ऋषि मुनियों ने गाया, क्यों तुमने उसको झुठलाया ।
हा अधर्म को धर्म बनाया, कहिये क्या इससे फल पाया ॥५३॥
सुनकर जगन्नाथ की बानी, कुछ तो समझ अरे अभिमानी ।
दयानंद सा नहीं अज्ञानी, जिसने की स्वधर्म की हानी ॥५४॥

इति

ब्राह्मण जाति चूंकि कौम का दिमाग है,

जिस कौम का दिमाग ठीक न हो उसके लिये तरक्की करना नामुमकिन है।

इसलिये उसकी तरक्की पर कौम की तरक्की का मदार है।

* ओ३म् *

ब्रह्मकुल वर्तमानदशा दर्पण

मुसद्दस।

जिसको

श्रीमान मास्टर सालिगरामजी शर्म्मा
चर्थावली ने रचा।

और

लाला द्वारकाप्रसाद अत्तार
बाज़ार बहादुरगंज, शाहजहांपुर ने देश-सुधारार्थ
छपवाया।

बिना आज्ञा ग्रन्थकर्त्ता के कोई महाशय न छापें।

प्रथम बार ४०००	सन् १९२० ई०	मूल्य प्र० पु०)॥

धर्मार्थ मुफ्त बांटने वालों के लिये १।) में १०० प्रति

Printed by K. C. Banerjee at the Anglo-Oriental Press, Lucknow—1920.

निवेदन ।

ऋषियों के कुल मे जन्म लेनेवाले बराय नाम ब्राह्मण भाइयो ! कृपा करके मुझे अपना बदख्वाह न समझ लेना, मैंने यह मुसद्दस तुम्हें चिढ़ाने या तुम्हारा दिल दुखाने के लिये नहीं लिखा, बल्कि तुम्हारी मौजूदा हालत का आईना तुम्हारे सामने पेश किया, कृपाकरके अपनी हालतको देखो, सोचो कि अविद्या ने तुम्हें कितना नीचे गिरा दिया, अफ़सोस तो यह है कि तुम्हारे गिरने से और वर्ण भी नीचे गिर गये, अब तुम अविद्या के कारण हर एक वेदोक्त कर्म के विरोधी और अवैदिक कर्म के सहायक बने हुए हो, जितनी बदरस्में क़ौम में फैली हुई हैं तुम उनकी पुष्टि करने में सब से आगे हो। क़ौम और मुल्क के खैरख्वाहों को तुम अपना दुश्मन समझते हो, तुम्हारी यह हालत क़ाबिल अफ़सोस है, सम्भलो, सुधरो, महिज़ दान दक्षिणा लेने और न्यौताखोरी पर अपने कुल गौरव को कुर्बान मत करो, अपनी सन्तान को पूर्ण वेदोक्त शिक्षा देने का प्रण कर लो। मूर्खपन की हालत में दान दक्षिणा लेने और न्यौताखोरी को पाप समझने लगो, तुम उनकी सन्तान हो जो धर्म रूपी नैया के खिवैया थे, मूर्ख बन कर तुमने इस नैया को तौहिमात के भँवर में डाल दिया॥

प्यारे अनपढ़ ब्राह्मणो ! मेरे निवेदन पर गौर से ध्यान दो और अब अपने को सुधारने का यत्न करो, क्योंकि तुम्हारे सुधार में बहुतों का सुधार है। लाखों स्त्री पुरुषों के तुम इस हालत में भी गुरु बने हुए हो, और अन्धो के अन्धे रहनुमा हो। आशा है कि मेरे भाव को समझोगे।

देश का हितैषी—सालिगराम शर्मा-

* ओ३म् *

ब्रह्मकुल वर्त्तमान दशा दर्पण

मुसद्दस ।

ब्राह्मण कभी रहनुमाये जहां थे ।
हक़ीक़ी धर्म के यही पासबां थे ॥
महा योगी तेजस्वी विद्वान् थे ।
बड़े तत्व ज्ञानी बड़े नुक़तादां थे ॥
थे वेद और वेदांग के पूरे माहिर ।
ब्रह्मज्ञान के राज़ थे इन पे ज़ाहिर ॥ १ ॥

गवर्नर थे यह मुल्क रूहानियत के ।
थे पुतले मुजस्सिम यह इन्सानियत के ॥
मुअल्लिम थे दुनिया में हक़्क़ानियत के ।
थे ग़व्वास दरियाय रब्बानियत के ॥
था पढ़ना पढ़ाना सदा कार इनका ।
था विद्या से भरपूर भण्डार इनका ॥ २ ॥

हर एक क़ौम में इनका रुतबा बड़ा था ।
हरएक मुल्क में इनका सिक्का जमा था ॥
हरएक क़ौम में जोकि छोटा बड़ा था ।
सदा सामने हाथ जोड़े खड़ा था ॥
यह गो मालो जायदाद रखते नहीं थे ।
महाराजा का पर लक़ब पा रहे थे ॥ ३ ॥

बनी नौ इन्सान पै इन का असर था।
मुतीय इनके फ़र्मान का हर बशर था॥
खुला हर जगह इनका विद्या का दर था।
इन्हीं पर हरएक क़ौम का बस हसर था॥
यही दीनो दुनियां में थे सब के रहबर।
झुकाते थे क़दमों पै इनके सभी सर॥ ४॥

मगर अब ज़माने ने पलटा जो खाया।
बहुत इनकी हालत को रद्दी बनाया॥
तमाम इन के उत्तम गुणों को मिटाया।
तहे खाक़ अज़मत को इनकी मिलाया॥
न थे काम करने के जो इनके लायक़।
उन्हें आज करने में हैं सब से शायक़॥ ५॥

बहुत इन में अफ़सोस [illegible] रकावें।
बहुत बैठ कूओं पै पान [illegible]॥
बहुत बन भगत रोज़ गर्[illegible] लावें।
बहुत बन स्याने पशू बध करावें॥
बहुत लुटया डोरी को कन्धे पै रखकर।
फिरें घूमते ज्योतिषी बन के घर घर॥ ६॥

बहुत आग चूल्हों की सुलगाने वाले।
बहुत कोथली लादकर लाने वाले॥
बहुत दर बदर मांगकर खाने वाले।
बहुत सादे लोगों को बहकाने वाले॥
बहुत पानी स्टेशनों पर पिलाते।

बहुत कोठी बँगलों में पंखे हिलाते ॥ ७ ॥
बहुत उन में करने लगे पहिलवानी।
बहुत उन में करने लगे कुलवानी ॥
बहुत उन में करने लगे हुक्कारानी।
बहुत उन में करने लगे फ़ीलबानी ॥
बहुत आज हुक्काम के अर्दली हैं।
बहुत उन में मज़दूर और कुली हैं ॥ ८ ॥
बहुत फिर रहे तीर्थों पर भिकारी।
बहुत दे रहे मन्दिरों में बुहारी ॥
बहुत सों ने हालत यहां तक बिगारी।
कि शूद्रों की करते हैं ख़िदमत गुज़ारी॥
कणाद और गौतम अगर ज़िन्दा होवें।
इन्हें देख सर अपना धुन २ के रोवें ॥ ९ ॥
नहीं वेद पढ़ने पढ़ाने के क़ाबिल।
नहीं यज्ञ करने कराने के क़ाबिल ॥
नहीं दान देने व पाने के क़ाबिल।
अगर हैं तो हैं मांग खाने के क़ाबिल ॥
यह अफ़सोस और सख़्त हसरत की जा है ॥
कि ऋषियों की सन्तान की यह दशा है ॥१०॥
हैं लाला जी और चौधरी जी सवार।
पियादा है मिश्र व सर पर है बार ॥
मिले क्या ही अच्छे लक़ब इन को यार।
बवर्ची ! गधा ! पीर जी ! और कहार !!

न है मान इनका न सतकार इनका।
हुआ नष्ट आचार व्यवहार इनका ॥११॥

सुबह कोई भंगी मुकाबिल जो आवे।
तो उसको हर एक खाल अच्छा बतावे॥
चले नर ब्राह्मण कोई देख पावे।
तो बस यह बहुत बदसगूनी कहावे॥
महा शोक है ऐसी हालत पै इनकी।
फटे है कलेजा ज़लालत पै इनकी ॥१२॥
मगर इसका इलज़ाम किसको लगावें।
किसे इस तनज़्ज़ुल का मुलज़िम बनावें॥
किसे इस अधोगति का कारण ठहरावें।
कहो किसको हम इनका शत्रु बतावें॥
यह सब इनके कर्मों ही का है नतीजा।
जो हालत का इनकी हुआ है यह दर्जा ॥१३॥

पड़ा ऐशो अशरत का जब इनपै साया।
तो झट आन आलस ने इनको दबाया॥
पठन और पाठन को दिल से भगाया।
फ़क़त म्योतारख़ोरी का गुर इक सिखाया॥
कि खाओ पियो और रहो खुश हमेशा।
न हो जिसमें मेहनत करो ऐसा पेशा ॥१४॥

रचीं सैकड़ों ऐसी मिथ्या कहानी।
कि बेहूदगी में नहीं जिनका सानी॥
वह लज्जित कथा जो न आवे बखानी।

जिन्हें सुनके खुद शर्म ने हार मानी ॥
बने शास्त्र इनके और धर्म इनका।
रहा और बाक़ी न कुछ कर्म इनका ॥ १५ ॥

बना जिस तरह से टका फिर कमाया।
किसी को डराया किसी को बहकाया ॥
किसी को ग्रह चक्र का भय दिखाया।
किसी को कहा देवतों ने सताया ॥
किसी को कहा भूत का है बखेड़ा।
किसी को कहा प्रेत ने तुझको घेरा ॥ १६ ॥

लगे करने जब इस तरह से कमाई।
तो की ज्ञान और गुण ने इनसे जुदाई ॥
सफ़ाई सब अन्तष्करण की मिटाई।
दिलों पर तमोगुण की तारीकी छाई ॥
न कर्म और धर्म इनको फिर अपना सूझा।
लगे करने बस एक फ़क़त पेट पूजा ॥ १७ ॥

बिना श्रम किये जो टका हाथ आवे।
तो फिर कोई क्यों सख्त मेहनत उठावे ॥
वह क्यों पढ़ने लिखने में दिलको लगावे।
किताबों में क्यों मग़ज़ पच्ची करावे ॥
बिला कष्ट ही मुफ्त जिसको मिले यों।
बताओ भला फिर वह खेती करे क्यों ॥ १८ ॥

मिलें मुफ्त के जिन को हर रोज़ न्यौते।
वह पढ़ने को फिर कैसे तैयार होते ॥

पढ़ाते वह क्यों अपने बेटे व पोते ।
पढ़ाने लिखाने में क्यों वक़्त खोते ॥
जिन्हें दक्षिणा बेपढ़े ही मिले गर ।
तो फिर क्यों पढ़ें वह भला दुख उठाकर ॥ १९ ॥

लगे मूर्ख अनपढ़ भी अब दान पाने ।
व हर रोज़ तर माल मुफ़्ती उड़ाने ॥
तो रख लिखने पढ़ने को अपने सिराने ।
लगे महिज़ गप्पाष्टक नित उड़ाने ॥
यहां ज़िक्र था खीर थी और कचौड़ी ।
यहां पूड़ी हलवा मिठाई पकौड़ी ॥ २० ॥

फ़लाने के लड्डू में दाना कड़ा था ।
फ़लाने के यहां घी बहुतही सड़ा था ॥
फ़लाने के यां नोन ज़्यादा पड़ा था ।
फ़लाने के रायता स्याह भी चढ़ा था ॥
फ़लाने ने दी दक्षिणा में दुअन्नी ।
फ़लाने ने दी एक लुटिया चौअन्नी ॥ २१ ॥

यह है दान और दक्षिणा की ही बरकत ।
इस कुल में फैली जो इतनी जिहालत ॥
पड़ी ख़्वांख़्वाही की है जब से आदत ।
तो की तर्क विद्या से सारी रिफ़ाक़त ॥
बने फिर रहे आज कोरे निरक्षर ।
कभी खानेगुल के जो थे मेहर अनवर ॥ २२ ॥

तअज्जुब ! जो उनके भले को सुझावें ।

उन्हें अपना यह जानो दुश्मन बतावें ॥
जो कमज़ोरियां उनकी उनको दिखावें ।
तो गुस्से से मुंह नाक उनपर चढ़ावें ॥
कहें उनको दुश्मन सनातन धरम का ।
विरोधी कहें शास्त्र के मरम का ॥ २३ ॥

सुनो अय ब्रह्म कुल के धुन्धले सितारो !
ज़रा अपनी हालत को तुम भी निहारो ॥
न नाहक़ उन्हें अपना दुश्मन पुकारो ।
जो ज़ाहिर करें ऐब तुम पर तुम्हारे ॥
न इल्ज़ाम उनपर लगाओ ख़ुदारा ।
जो दिल से तुम्हें चाहते हैं बेचारा ॥ २४ ॥

जो तुम अपना अब कुछ भला चाहते हो ।
तनज़्ज़ुल से गर अब उठा चाहते हो ॥
जो बाआबरू अब रहा चाहते हो ।
बुज़ुर्गों की मानिन्द हुआ चाहते हो ॥
तो पढ़ने पढ़ाने को अब फ़र्ज़ जानो ।
अविद्या को सच मुच बुरा मर्ज़ मानो ॥ २५ ॥

न कुछ दोष क़िस्मत का अपने बताओ ।
न इल्ज़ाम कलियुग के ज़िम्मे लगाओ ॥
ख़ताबार मत राज को तुम ठहराओ ।
गुनहगार मत दूसरों को बनाओ ॥
नहीं और की इसमें कोई ख़ता है ।
तुम्हीं ने बिगाड़ी ख़ुद अपनी दशा है ॥ २६ ॥

बुज़ुर्गों के इतिहास को देखो भालो।
नज़र गौर से उन के जीवन पे डालो॥
चलन अपना तुम उन के जैसा बनालो।
अमल उनके सांचे में तुम अपना ढालो॥
करो तुम भी वह ही जो वह कर रहे थे।
भरो दिल में वह ही जो वह भर रहे थे॥ २७॥

कपिल देव के पास एक रोज़ अर्जुन।
गये दौड़ जंगल में देने निमन्त्रण॥
ऋषिवर झुकाये हुये नीची गर्दन।
थे मशगूल लिखने में उस वक्त दर्शन॥
बहुत देर के बाद जब सर उठाया।
तो अर्जुन को बैठे हुए पास पाया॥ २८॥

ऋषी ने सबब आने का उनसे पूछा।
तो अर्जुन ने सर उन के क़दमों पे टेका॥
कहा आजिज़ी से कि अय ब्रह्मवेत्ता।
युधिष्ठिर का लाया हूँ मैं यह संदेसा॥
कि कल महल शाही में तशरीफ़ लायें।
वहीं महाऋषी देव भोजन भी पायें॥ २९॥

यह सुनकर ऋषीने किया सरको नीचा।
बहुत देर तक अपने कुछ मन में सोचा॥
फिर इक बारगी एक दम सर्द खींचा।
लगा बहने आंखों से आंसू का दरिया।
ऋषी को जो अर्जुन ने यूं रोते देखा।

बहुत नम्रता पूर्वक उन से पूछा ॥ ३० ॥
कि ऐ ब्रह्म विद्या के महरे मुनव्वर !
खतावार किस बात का है युधिष्ठिर ॥
कि जो आप ने नामको उसके सुनकर !
किया चश्म यर्फ़ान को अश्क से तर ॥
तो बोले मुनीश्वर कि अय प्रिय अर्जुन !
युधिष्ठिर नहीं मेरे रोने का कारन ॥ ३१ ॥
ख्याल एक ऐसा ही दिल में समाया ।
कि जिसकी वजह से मेरा दिल भर आया ॥
वह यह है कि पलटा ज़माने ने खाया ।
तनज्जुल ब्रह्मकुल का होने को आया ॥
ब्रह्म कुल का होने लगा है निरादर ।
बुलाने लगे राजा जो उन को घरपर ॥ ३२ ॥
ब्रह्म कुल में जन्मेंगे अब ऐसे अक्सर ।
जो ख्वानों पे कर देंगे विद्या निछावर ॥
फिरेंगे वह खाते हुए रोज़ घर घर ।
रहेगा न कुछ मान उन का न आदर ॥
वह ऋषियों की इज़्ज़त गिराने लगेंगे ।
ब्रह्म कुल की अज़मत मिटाने लगेंगे ॥ ३३ ॥
ऋषीश्वर ने उस वक़्त बादीदा गिरयां ।
कहा था जो अर्जुन से हाले परेशां ॥
उसे तुमने अफ़सोस ऋषियों का सन्तां ।
चलन से किया अपने ऐसा नुमायां ॥

कि फ़र्क़ इस में असली नहीं देखते हैं ।
मूर्खों का कहा सब सही देखते हैं ॥ ३४ ॥
वह उस्ताद दौरान महाराज शंकर ।
गये जब मलाबार में विद्या पढ़ कर ॥
खबर उन के आने की राजा ने सुन कर ।
यह चाहा कि शंकर को बुलवायें घर पर ॥
नज़र भेंट के साथ एक मर्द दाना ।
किया पास शंकर के उसने रवाना ॥ ३५ ॥
वह सेवा में जिस वक़्त शंकर के पहुँचा ।
किया भेंट वह माल था जो कि लाया ॥
किया अर्ज़ उसने कि अय फ़ख़र दुनिया ।
महाराजा ने आप को है बुलाया ॥
तो शंकर ने उस भेंट में लात मारी ।
कहा हम नहीं करते दर्बारदारी ॥ ३६ ॥
हमें क्या ग़रज़ घर पै राजा के जावें ।
उन्हें गर ग़रज़ हो तो खुद यां पै आवें ॥
नहीं माल दौलत से हम दिल लगावें ।
न हम मालदारों को गर्दन झुकावें ॥
सिवा ब्रह्म के और को सर झुकाना ।
नहीं हम को वाजिब है मर्द दाना ॥ ३७ ॥
जवाब उस ने था जोकि शंकर से पाया ।
वह सब अपने राजा को जाकर सुनाया ॥
यह राजा के उस वक़्त दिल में समाया ।

है शंकर का बेशक बड़ा हम से पाया ॥
गया खुद लिया साथ में अपना बेटा ।
व सर जाके शंकर के क़दमों पै टेका ॥ ३८ ॥
यह तप और विद्या ही का सारा बल था ।
नहीं राज आज्ञा का उन पर दख़ल था ॥
सदाचार, सन्तोष, सत पर अमल था ।
उन्हें सब से स्वादिष्ट इक मोक्षफल था ॥
नहीं गाव राजा से था काम उन को ।
प्यारा था एक ओम् का नाम उन को ॥ ३९ ॥
वह उजड़े हुये हस्तिनापुर के खण्डर ।
जहां राज करते थे राजा युधिष्ठिर ॥
जहां भीम अर्जुन व उन के बिरादर ।
फ़ने जंग के नित दिखाते थे जौहर ॥
कहे हैं "न होता अगर व्यास ज्ञानी ।
सुनाता न कोई हमारी कहानी" ॥ ४० ॥
अयोध्या श्री राम की राजधानी ।
बहे जिस के क़दमों पे सरजू का पानी ॥
नहीं सारी दुनियां में था जिस का सानी ।
जहां बास करते थे सब ब्रह्म ज्ञानी ॥
वह वाशिष्ट की याद में रो रही है ।
उन्हें याद कर कर के जां खो रही है ॥ ४१ ॥
कपिल औ मुनी व्यास गौतम से इनसां ।
ब्रह्म कुल में थे जिन दिनों जलवा अफ़शां ॥

अजब इस का था तेज और बल नुमायां ।
लरजते थे दुनियां के सारे हुकुमरां ॥
जो पूछो कि क्यों उनकी गर्दन थी झुकती ।
कहूंगा कि विद्या की थी एक शक्ती ॥ ४२ ॥

यह उन की कृपा का ही फल बरमला है ।
जो तुम को भी अबतक सराहना मिला है ॥
तुम्हारा बताया ही रस्ता चला है ।
तुम्हारा खिलाया ही हर गुल खिला है ॥
मगर अब जमाना नहीं है वह प्यारो ।
ख्यालात कोहना को दिल से बिसारो ॥ ४३ ॥

जो इज्ज़त से जीना है दरकार तुमको ।
ब्रह्म कुल की इज्ज़त से है प्यार तुम को ॥
कराना है गर अपना सत्कार तुम को ।
बसाना है गर अपना घर बार तुम को ॥
तो निकृष्ट आजीविका को त्यागो ।
पठन और पाठन में वेदों के लागो ॥ ४४ ॥

ध्वनि वेद की फिर गुंजाने लगो तुम ।
हवन यज्ञ फिर नित रचाने लगो तुम ॥
पढ़ो आप खुद और पढ़ाने लगो तुम ।
कर्म काण्ड सारे कराने लगो तुम ॥
उठो तुम भी आगे क़दम को बढ़ाओ ।
ब्रह्म तेज दुनिया को अपना दिखाओ ॥ ४५ ॥

तुम्हीं भाइयो ! धर्म के रहनुमा हो ।

तुम्हीं धर्म की नाव के नाखुदा हो ॥
तुम्हीं चश्म रूहानियत की ज़िया हो।
तुम्हीं इल्म के गौहरे बेबहा हो ॥
तुम्हारी भलाई में सब का भला है।
तुम्हारी बुराई में सब का बुरा है ॥ ४६ ॥

नहीं ख़ौफ़ कुछ हाथ में नुक्स हो गर।
न है पेट और पांव के नुक्स का डर ॥
वले गर बिगड़ जाय इनसान का सर।
तो होजाय कुल जिस्मका हाल अबतर ॥
बनी नौ इनसान को गर जिस्म माने।
तो हम तुमको उस जिस्म का सर बखानें ॥ ४७ ॥

तुम्हारा बिगड़ना, बिगड़ना है सब का।
तुम्हारा सुधरना, सुधरना है सब का ॥
तुम्हारा सँवरना, सँवरना है सब का।
तुम्हारा उभरना, उभरना है सब का ॥
तुम्हीं गर करोगे तो कुछ काम होगा।
नहीं तो यह कुल देश बदनाम होगा ॥ ४८ ॥

यह जो कुछ भी मैंने लिखा और कहा है।
ख्यालात का मेरे फोटू खिंचा है ॥
नहीं दिल दुखाना मेरा मुद्दआ है।
न तान और तशनीअ बिल्कुल रवा है ॥
है सच्चे प्रेम और हित की कहानी।
जो साक़िब ने इस वक़्त लिख कर बखानी ॥ ४९ ॥

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

श्रीमती विद्यावती देवी उपन्यास

देव नागरी अक्षरों में, सुन्दर टाइप से, बढ़िया काग़ज़ पर छपकर तैयार है। शीघ्रही मँगाइये, अन्यथा दूसरे संस्करण का इन्तज़ार करना पड़ेगा। मूल्य ।।।) सजिल्द ।।।=)

इस पुस्तक के विषय में, मैं स्वयं कुछ प्रशंसा न कर इस स्थान पर केवल पं० चन्द्रिका प्रसाद जी गुप्त लखनऊ निवासी की राय दर्ज किये देता हूँ जिस से आप पुस्तक के अच्छे बुरे का अन्दाज़ करलें:—

'श्रीमती विद्यावती देवी उपन्यास'—पुस्तक के लिखने का ढंग बहुत अच्छा है। कथा रोचक है। समाज के सिद्धान्तों का बड़ी ही खूबी से वर्णन किया है। शब्दावली यद्यपि उर्दू की बहुत लिलित है। बीच २ में काफ़ी फ़िलासफ़ी पढ़ने को मिलता है। प्रकृति-वर्णन चित्तग्राही है। चन्द्र विद्यावती के मुख से इतने ऊँचे विचारों का प्रकाश होना, कि आजकल के बहुधा बी. ए. एम. ए. के दिलों में मुश्किल से आते हैं, यह केवल आर्य संस्कारों का गौरवस्वरूप है। आर्य पुरुषों किंवा आर्यदेवियों का हिन्दू पब्लिक के साथ उत्तम व्यवहार बड़ी उत्कृष्टता से दिखलाया गया है। पुस्तक की उत्तम रचना देखकर लेखक की प्रशंसा किये बिना जी नहीं मानता। आर्यसाहित्य में इस प्रकार के उपन्यासों की बड़ी ही आवश्यकता है। भाषा अगर सरल हिन्दी होती तो पुस्तक का गौरव और भी बढ़ जाता।"

पता:—द्वारकाप्रसाद अत्तार, शाहजहाँपुर।